4189

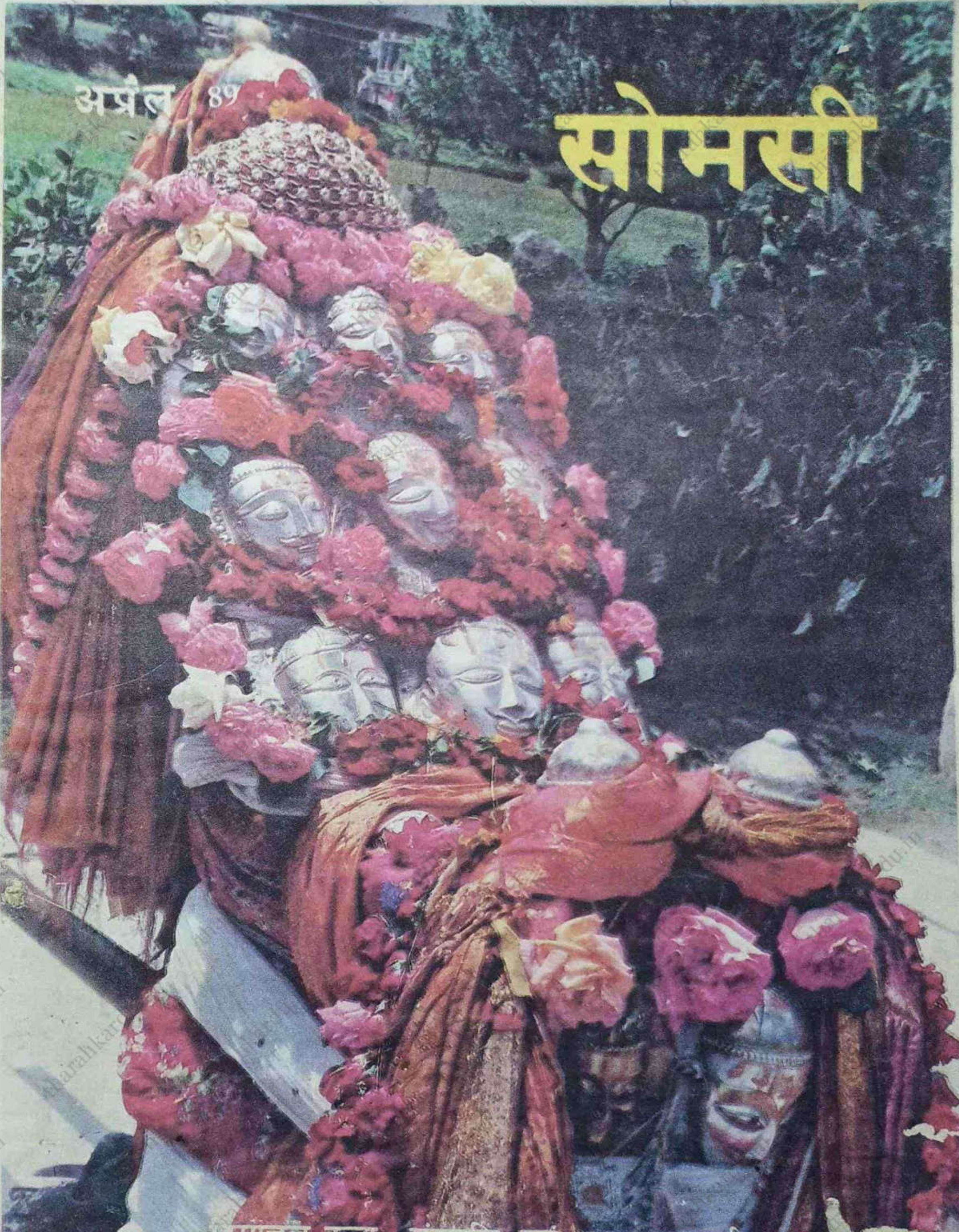

सम्पादकः डॉ० बंशीराम शर्मा
सचिव
हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
शिमला- 171001

त्रैमासिकः जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

अंकः जनवरी, 1989

सम्पादन सहयोगः सरोज सांख्यायन
उपसम्पादकः जयन्ती चौहान
प्रूफ शोधनः निर्मल कौशल

आवरण एवं पारदर्शियांः हिमाचल अकादमी,

वार्षिक मूल्यः 12/-
एक प्रतिः : 3/-

प्राप्ति स्थानः

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी
संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

विषयानुक्रमणिका

क्र.सं.	लेख	लेखक	पृष्ठ
	सम्पादकीय		1
1.	हिमाचल की बौद्ध संस्कृति में पद्मसम्भव का योगदान	सोहनलाल शर्मा	9
2.	च्यवनमुनि और बाण गगा का महात्म्य	डॉ0 ब्रह्न दत्त शर्मा	12
3.	हिमाचली लोक नृत्यो में ताण्डव का प्रभाव	डॉ0सूरत ठाकुर	16
4.	हिमाचल के लोक गीतों में रामायण	श्यामा ठाकुर	26
5.	हिमाचली संस्कृति में देवताओं के माली की प्रथा	रामेश्वर दत शर्मा	29
6.	कैता माया राम की आत्महत्या- एक ऐतिहासिक सन्दर्भ	के. अगरूप लाहुली	34
7.	हरितालिका	राजरानी शर्मा	45
8.	हिमाचल की संस्कृति में गूगा पीर	पी.सी.शर्मा	48
9.	दौला सिद्व और कौला सिद्व	डॉ0 रत्न चन्द शास्त्री	57
10.	चौपाल का अनूठा पर्व खिला भड़ाच	स्नेह भारदाज	60
11.	पहाड़ी देवताओं के रथ	मुरारी शर्मा	64
12.	सिरमौर की लोक गाथाएं	यज्ञदत शर्मा	68
13.	कांगड़ा में रली विवाह	सुरेद्र शर्मा	70
14.	कांगड़ा का किला इतिहास की कसौटी पर	अश्विनी कुमार गर्ग	73
15.	रायपुर व गानवी क्षेत्र का रई मेला		76
16.	हिमाचल अकादर्म। की गतिविधियां		

tharahkardu.in

सम्पादकीय

संस्कृति मानव-जाति के आचार विचार, सामाजिक चेष्टाओं तथा समेकित अनुभव का जीवन्त भण्डार है। जिस प्रकार "एक सद् विप्राः बहुधा वदन्ति" अर्थात सृष्टि के एक ही तत्व को विद्वानों द्वारा अनेक नामों से पुकारा जाता है, उसी प्रकार संस्कृति की अनेकानेक परिभाषाएं उकेरी गई हैं और उसे अनेक भागों उपभागों में विभाजित किया जाता है। वास्तव में मानव जाति के एक छोर से दूसरे छोर तक व्याप्त प्रेरणा शक्ति तथा मनुष्य होने की पहचान ही संस्कृति हैं। यदि समग्र जीवन को एक इकाई मानकर उसका अध्ययन संभव हो तो संस्कृति को उपभागों व विभागों में बांटने की कतई आवश्यकता नहीं है, अन्यथा रहन-सहन के ढंग, वस्त्राभूषण, देवी देवताओं तथा अन्य आत्माओं की परिकल्पना, सृष्टि विद्या और विश्व दर्शन, टोने टोटके, परलोक सम्बन्धी अवधारणाएं, स्रष्टा व सृष्टि सम्बन्धी भेद-बुद्धि मनुष्य का उत्कर्ष, भौतिक जगत की दिव्यता, व्यक्त और अव्यक्त के सम्बन्ध की परिभाषा यज्ञ-अनुष्ठान, कर्मठता-समन्वय-अनुशासन की त्रिवेणी, कल्याण व भद्रता की भावना ही संस्कृति है। इस सामाजिक धरोहर के अन्तर्गत भौतिक तथा धार्मिक और आध्यात्मिक अनुभवों व क्रिया कलापों, विश्वासों, धारणाओं, नीतियों, परम्पराओं तथा उन्हें प्राप्त करने के प्रयत्नों को सम्मिलित किया जा सकता है। इस अद्भुत मानवीय उपलब्धि में भाषा तथा वाक्-परिपाटी, भोजन सम्बन्धि आदतें, आवास, परिवहन, परिधान, भोजन-पात्र तथा अन्य आवश्यकताओं से सम्बन्धित सामग्री, हथियार, व्यवसाय तथा उद्योग, कलाएं, पुराकथाए तथा वैज्ञानिक ज्ञान, धार्मिक अनुष्ठान तथा आचार-व्यवहार, पारिवारिक तथा सामाजिक परम्पराए, सम्पति तथा उससे सम्बन्धित धारणाएं, सरकार, युद्ध प्रक्रियाएं, संचार साधन, संस्कार, आपसी रिश्ते, सामाजिक लेन-देन, उत्तराधिकार-नियम, लोक धारणाएं, ललित कलाएं, साहित्य मनोरजन के साधन, दर्शन आदि सम्मिलित है।

इस प्रकार संस्कृति सामाजिक व्यक्तित्व है। सामाजिक अनुभव संस्कृति है परन्तु एक व्यक्ति के उदान्त अनुभव समग्र संस्कृति नहीं है। भारतीय चिन्तन की छः पद्धतियां जिनमें न्याय वैशेषिक, पदार्थों की सत्ता, कारण कार्य की प्रक्रिया, प्रकृति का विकास, सत्व-रज और तम की पृथकता और सहयोग तथा योग (चित्तवृतियों

का निरोध§ हमारी संस्कृति की व्यवस्थित परिभाषाए हैं। आरम्भ में संस्कृति का स्वरूप आध्यात्मिक रहा, बाद मे वह धार्मिक हुआ और कालान्तर मे ऐहिकता अथवा भौतिकता की ओर अग्रसर हुआ।

सोमसी संस्कृति के विभिन्न उपादानों के संरक्षण, अनुसन्धान तथा प्रालेखन की ओर उन्मुख है। पर्वतीय संस्कृति में बौद्ध धर्म और उसमें गुरू पद्मसम्भव का महत्वपूर्ण स्थान है। गुरू पद्मसम्भव को भोट भाषा मे लोचा रिम्पोछे कहा जाता है। हिमाचल प्रदेश मे रिवालसर §पौराणिक रेवासर§ उनकी तप स्थली रही है। उन्होंने रिवालसर झील के समीप की पहाड़ी पर तपस्या की और आज भी वहा उनकी ध्यान गुफा विद्यमान है। रिवालसर झील में तैरने वाले पथ्थार व घास के "टल्ले" §समूह§ जो झील के एक ओर से दूसरे किनारे तक स्वयंमेव गतिशील रहते हैं, में लोचा रिन्पोछे की आत्मा का निवास माना जाता है। प्राचीन मण्डी को भोट ग्रथों में "जहोर" कहा जाता है। जहोर के राजा की राजकुमारी मन्दरवा से गुरू पद्मसम्भव का विवाह हुआ और बाद में उन्होंने तिब्बत व हिमालय के क्षेत्रों में बौद्धधर्म का प्रचार किया। डॉ0 सोहनलाल शर्मा ने अपने प्रस्तुत लेख में गुरू पद्मसम्भव के योगदान पर सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया है। पौराणिक विभूति तथा आयुर्वेद विज्ञान के मनीषी च्यवन का हिमाचल से भी सम्बन्ध रहा है, इस विषय मे डॉ0 ब्रह्मदत्त शर्मा का लेख इस अंक में पठनीय है।

अन्य रचनाएं भी महत्वपूर्ण जानकारी को संजोए हुए हैं। आशा है यह अंक पाठकों को आकर्षित करने में सक्षम हो सकेगा।

बंशीराम शर्मा

हिमाचल की बौद्ध संस्कृति में पद्मसम्भव का योगदान

- सोहन लाल शर्मा

इस से पूर्व कि हम हिमाचल की बौद्ध संस्कृति में पद्मसम्भव के योगदान की चर्चा करें हमें उनके जीवन के सम्बन्ध में थोड़ी जानकारी प्राप्त कर लेना उचित होगा। यह खेद की बात है कि उनके जीवन के बारे में भारतीय स्रोतों से कोई विशेष सूचना प्राप्त नहीं होती। तिब्बती साहित्य ही एक मात्र ऐसा स्रोत है जो गुरू रिन्पोछे के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालता है।[1] लेकिन तिब्बती स्रोतों की सबसे बड़ी दिक्कत यह रहती है कि उनसे प्राप्त सूचना अधिकतर कालक्रमानुसार नहीं होती और इस प्रकार किसी भी महान विभूति का मूल्यांकन हम विशुद्ध ऐतिहासिक कालक्रम की परिधि में बांध कर नहीं कर सकते। पद्मसम्भव के बारे में भी हमेशा यह कठिनाई हमारे सामने रहती है।

वैसे तो कई विद्वानों ने गुरू रिन्पोछे के जीवनकाल की अवधि बिल्कुल सही-सही वर्षों से बताने की कोशिश की है लेकिन ऐसा प्रयास केवल कल्पना-मात्र ही हो सकता है। तथापि मोटे तौर पर उनका समय आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ से लेकर उत्तरार्ध के बीच निर्धारित किया जा सकता है। वास्तव में पद्मसम्भव का रहस्यमयी और चमत्कारी व्यक्तित्व अनेक पुराख्यानों और मिथिकों के घनघोर बादलों से इस तरह आच्छादित है कि ऐसे घटाटोप से एक ऐतिहासिक पुरूष के रूप में उन्हें उद्घाटित कर पाना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य दीख पड़ता है।

पद्मसम्भव से सम्बन्धित गीङ-म-पा साहित्य और तेर-मा तथा मौखिक परम्परा पर आधारित नम-थार की संख्या इतनी विशाल है कि उसका ठीक-ठीक अन्दाजा लगा पाना असम्भव है। पा-वो चुग-लग ठेंग-वा[2] का यह दावा है कि उन्होंने गुरू रिन्पोछे पर लिखे गये 50 थांग-ईग देखे हैं। औरग्यन लिंग-प द्वारा खोजे गये थांग-ईग शेल-डग-मा से पता चलता है कि पद्मसंभव ने अपने जीवन की 10,900 कथाएं उद्घाटित की हैं। ऐसा अनुमान है कि ये कहानियां उनकी पांच पत्नियों द्वारा लिपिबद्ध की गई थीं जो उन्होंने भावी पीढ़ियों के हित हेतु छुपा कर रख दी थी[3]

पद्मसम्भव के जन्म के बारे में दो परम्परायें प्रचलित हैं। एक परम्परा अनुसार महान तंत्राचार्य स्वयभूं थे और कमल से उनका प्रादुर्भाव हुआ था। उन्हें उड्डयन[4]

के राजा इन्द्रबोधि ने दत्तक पुत्र के रूप में अपना लिया था। लगभग सभी जीवनियां इस कहानी का उल्लेख न्यूनाधिक फेरबदल के साथ करती हैं। दूसरी परम्परा के अनुसार गुरु रिन्पोछे उड्डयन के राजा शुक और रानी जालीन्द्र के गर्भ से साधारण मनुष्य की तरह पैदा हुए बताये जाते हैं, भले ही उनके शरीर पर पद्म और बज्र के चिह्न विद्यमान थे।[5] कमल से उत्पन्न परम्परा के अनुसार पद्मसम्भव का प्रादुर्भाव धनकोष[6] नामक सरोवर से हुआ था। कई विद्वानों का विचार है कि यह सरोवर वर्तमान रिवालसर (मण्डी) झील ही है जहां गुरु रिन्पोछे पैदा हुए थे।[7] थाबतेन जिगमेद नोरबू[8] तथापि, लिखते हैं कि जिस कमल से पद्मसम्भव प्रकट हुए थे वह सिन्धुनदी में ही खिला था अर्थात् धनकोष सरोबर कोई अलग सरोवर नहीं था। गुरु रिन्पोछे की कतिपय जीवनियों में उक्त दोनों परम्पराओं के तत्व एक साथ भी मिल जाते हैं। अतः यह कह पाना कि कौन सी परम्परा कम प्रामाणिक है, दुष्कर कार्य लगता है। इसी प्रकार राजा इन्द्रबोधि और उनके द्वारा अपने मन्त्री चन्द्रक्षेम को चिंतामणि ढूंढने के लिए भेजना, अन्धे राजा की आखों की रौशनी लौट आना[9] आदि अनेक उपकथायें हैं जो पद्मसम्भव के आरम्भिक जीवन और कार्यकलापों से इस तरह जुड़ी हुई है कि उन्हें एक दूसरे से अलग कर पाना और उनमें से ऐतिहासिक तथ्यों को छांटना टेढी खीर लगता है।

गुरु रिन्पोछे ने तिब्बत जाने से पूर्व भारत के अनेक महायानी विद्वानों जैसे बुद्ध श्री ज्ञान, उनके शिष्य आचार्य बुद्धगुप्त और अनगवज्र से प्रज्ञापारमिता सूत्र और विभिन्न तन्त्रों का व्यापक ज्ञान अर्जित कर लिया था। तन्त्र बौद्धदर्शन और अन्य गुह्य विज्ञानों में उच्चस्तरीय प्रवीणता प्राप्त करने और ब्राह्मण विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित करने के कारण उन्हें बहुत ख्याति मिली जिसके फलस्वरूप उन्हें नालन्दा महाविहार के,मे योगाचार का प्राध्यापक नियुक्त किया गया।[10]

पद्माका-थाग-ईग से हमें पता चलता है कि पद्मसम्भव ने ज्योतिष, आयुर्विज्ञान भाषा, कला तथा शिल्प विज्ञान में भी अपार ज्ञान प्राप्त कर लिया था और इन विषयों पर। ग्रंथों की रचना भी की थी।[12]

पदमसम्भव के हिमाचल में पदार्पण से पूर्व ही लाहुल घाटी तथा अन्य क्षेत्रों में श्रमण धर्म का व्यापक प्रचार हो चुका था और लोग मठ-मंदिर आदि का निर्माण करने लग गये थे।[13] प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनत्सांग (629-645) ने लाहुल की यात्रा की थी[14]। हम जानते हैं कि यह चीनी पर्यटक एक निष्ठावान बौद्ध था और बौद्ध ग्रन्था एकत्रित करने के उद्देश्य से भारत आया था। "डाकिनी द्वीप" (खा-डोईलिंग) जैसाकि लाहुल का शास्त्रीय नाम है, उसे आकर्षित किये बिना न रह सका। लेकिन खेद का विषय है कि इस चीनी चात्री ने अपने यात्रा- वृत में लाहुल में तत्कालीन बौद्ध धर्म की स्थिति के बारे में चुप्पी साध ली।

'त्रीङ-म-पा' सम्प्रदाय के लोग यह विश्वास करते हैं कि इस धरती पर एक चप्पा-मात्र भी ऐसी भूमि नहीं है जहां आचार्य पद्मसम्भव के श्री चरणों का स्पर्श न हुआ हो। हिमाचल के सन्दर्भ में किन्नौर के नाकोलिओ, चागो और लाहुल में त्रिलोकनाथ, गून्धला (गुरु घण्टाल) और मण्डी के रिवालसर आदि स्थानों से, गुरु रिन्पोछे का नाम जोड़ा जाता है [15]। मण्डी को छोड़कर जिसके बारे में आचार्य के आगमन का विस्तृत वर्णन पद्मा-का-थांग-ईग में मिलता है, अन्य स्थानों पर वह गये हों, ऐसा कोई लिखित साक्ष्य अथवा शिला-लेख आदि हमें उपलब्ध नहीं होता । तथापि किन्नौर के चूलिंग गांव में तीलासंग नामक गुफा है, जिसे स्थानीय लोग उर्ग्यन के नाम से भी पुकारते हैं। इस गुफा में पद्मसम्भव के शरीर की एक छाप चट्टान पर मौजूद है। इस छाप की प्रामाणिकता के बारे में राय भिन्न-भिन्न हो सकती है और इस पर आगे अनुसंधान किये जाने की आवश्यकता है। हिमाचल में हांगो, लिओ, सुन्नम, तिलिंग, तंगती, गुंगरी, सगनम तथा तोदनम आदि स्थानों पर ही त्रिङ--म-पा सम्प्रदाय के मंदिर है। लाहुल का प्राचीन शशुर गोन्पा भी प्रारम्भ में त्रिङ-म-पा सम्प्रदाय का ही बिहार था।[16] जनश्रुति के अनुसार ऐसा माना जाता है कि त्रिलोकनाथ और इसमें स्थापित आर्य अवलोकितेश्वर की मूर्ति आचार्य पद्मसम्भव ने ही स्थापित की थी। यहां के स्थानीय लोगों की यह भी धारण है कि त्रिलोकनाथ का मंदिर और मूर्ति स्वंयभू है और इसके निर्माण में किसी मनुष्य के हाथ का स्पर्श नहीं है।[17] इसीं प्रकार गून्धला के बारे में भी किवदन्ती प्रचलित है कि डिल-बु-री(घण्टागिरि) के अंचल में स्थित बौद्धविहार में संगमरमर से निर्मित अवलोकितेश्वर के मस्तक के एक प्रतिरूप को पद्मसम्भव ने ही स्थापित किया था[18] ।

प्रो० अंगरूप का कथन है कि यदि हम जनश्रुति को आधार मान कर यह स्वीकार कर भी लें कि आचार्य पद्मसम्भव ने लाहुल वादी की यात्रा की थी, तो यह निश्चित है कि उन्होंने वहां पर धर्म-प्रचार का काम नहीं किया, क्योंकि तंत्रयान के पात्र के लिए निष्ठावान् पात्र और पूर्वव्याकृत पुरूष की आवश्यकता होती है। परन्तु लाहुल के सन्दर्भ में ऐसी बातों का उल्लेख किसी बौद्धशास्त्र में नहीं मिलता ।[19]

मण्डी में पद्मसम्भव के आगमन की कहानी बड़ी दिलचस्प है । पद्मा-का-थांग-ईग[20] के अनुसार मण्डी के राजा अर्षधर की 360 रानियां थी और 720 मन्त्री थे। पटरानी हौकी के गर्भ से एक चमत्कारी बालिका पैदा हुई जिसका नाम कुमारी देवी मन्दारवा रखा गया। इस लड़की के शरीर पर जन्म से ही बुद्ध के 32 लक्षण विद्यमान थे। एक योगी ने भविष्यवाणी की थीं कि यह अद्भुत कन्या गृह-त्याग करेगी और योगिनी बनेगी। पद्मसम्भव को जब अन्तर्दृष्टि से यह ज्ञात हो गया कि मन्दारवा को धर्म-उपदेश देने का उपयुक्त समय आ गया है तो वह धनकोष सरोवर से बादल पर उड़कर उस राजकुमारी के पास मण्डी में पहुंचे। उस समय राजकुमारी और उसकी सहेलियां जंगल

में विचरण कर रही थीं। उन्होंने इन्द्रधनुष पर विराजमान एक सुन्दर युवक को देखा। वह एक उद्यान में उतरा और सभी बालिकाओं ने उन्हें झुक कर प्रणाम किया। तब मन्दारवा ने पद्मसम्भव को अपने विहार में आमंत्रित किया राजकुमारी ने गुरू रिन्पोछे से उनके माता-पिता तथा देश के बारे में पूछ-ताछ की। आचार्य ने मन्दारवा को बताया कि उनके कोई माता-पिता नहीं हैं। वह केवल शून्यता का उपहार मात्र है। वह अमिताभ और अवलोकितेश्वर का सार-तत्व है और धनकोष नामक सरोवर में प्रस्फुटित पद्म से उत्पन्न हुए हैं। पद्मसम्भव ने कहा, " मैं आदिबुद्ध, 'वज्रधरे' और 'गया' के बुद्ध का सार-तत्व हूँ । मैं समस्त प्राणितजगत् के कल्याणार्थ प्रकट हुआ हूँ । मैं सत्य की पताका इस संसार की दस दिशाओं में फहराऊंगा" । तदनन्तर पद्मसम्भव ने मन्दारवा और उसके 500 अनुयायिओं को धर्मोपदेश देकर तीन योगों की शिक्षा दी। इस सारे घटनाक्रम को एक गड़रिया देख रहा था । वह उस विहार में गया जहां उसने मन्दारवा और पद्मसम्भव के बीच चल रहे वार्तालाप को सुना। उसने तुरन्त राजा को सूचित किया कि उनकी राजकुमारी एक युवक ब्रह्मचारी के साथ विहार में रह रही है और वह उतनी शीलवान तथा पवित्र नहीं है जितना कि वे लोग उसे समझते हैं। राजा यह लांछन सुनकर स्तब्ध रह गया और उसने घोषणा की कि जो व्यक्ति गडरिए द्वारा लगाये गये आरोप को सिद्ध करेगा, उसे समुचित रूप से पुरस्कृत किया जायेगा। राजा ने आदेश दिया कि विहार के द्वार तुडवा दिये जायें और उस युवक को पकड़ लिया जाये। इस प्रकार पद्मसम्भव को पकड़ लिया गया और रस्से से बांध दिया गया । राजा ने एक और आदेश दिया कि गांव-वासियों से तिल का तेल एकत्रित किया जाये और युवक को उसमें जला दिया जाये। मन्दारवा को सजा देने के लिए उसे निरवस्त्र कर एक गड्ढे में डाल दिया ताकि उसे नीला आकाश तक नज़र न आये। उसकी दो सहयोगी मुख्य भिक्षुणियों को एक काल कोठड़ी में डाल दिया गया और अन्य भिक्षुणियों को विहार में ही बन्द कर दिया गया ताकि वे बाहरी दुनिया की आवाज़ तक न सुन सकें ।

17 हजार लोगों को लकड़ी का एक एक गट्ठा और थोड़ा तिल का तेल लाने के लिए कहा गया । कपड़े का एक लम्बा टुकड़ा तेल में भिगोकर पद्मसम्भव के शरीर पर लपेट दिया गया। तत्पश्चात् उसके ऊपर तालवृक्ष के पत्तों का ढेर लगा दिया गया और उसके ऊपर लकड़ी का अंगार रख दिया गया । फिर उस सारे ढेर पर तेल छिड़का गया। चिता एक पहाड़ की मानिन्द उंची दिख रही थी और जब उसे चारों ओर से अग्नि दी गई तो धूएं ने सूर्य और आकाश को आच्छादित कर दिया। एक बहुत बड़ी आवाज़ सुनी गई और ऐसा प्रतीत हुआ कि भूकम्प आ गया हो। सभी देवता और बुद्ध पद्मसम्भव की सहायता के लिए प्रकट हुए। किसी ने लकड़ी को इधर-उधर किया तो किसी ने तेल से सिक्त कपड़े को गुरू रिन्पोछे के शरीर से अगल कर

दिया। कुछेक ने सरोवर पैदा कर दिया। घटना के सातवें दिन बाद राजा ने देखा कि चिता से धुआं अभी भी उठ रह रहा है, तो उसने सोचा कि यह युवक अवश्यमेव कोई अवतारी पुरूष होगा। उसने तुरन्त अपने मन्त्रियों को इस तथ्य की छानबीन करने के लिए भेजा। मन्त्री यह देखकर हैरान रह गये कि जहां चिता थी वहां एक इन्द्रधनुष से घिरा हुआ विशाल सरोवर उभर आया है। सरोवर के मध्य एक कमल खिल रहा है और उसपर लगभग आठ वर्ष का सुन्दर बालक जो प्रभामण्डल से मंडित है, विराजमान है और उसका मुखमण्डल ओस जैसे द्रव्य से ढका हुआ है। मन्दारवा जैसी-शक्ल की आठ कन्यायें उस बालक की निगरानी कर रही है। राजा ने स्वयं इस चमत्कारी दृश्य को देखा। राजाने पश्चात्ताप किया और पद्मसम्भव को अतीत,वर्तमान और भविष्य का बुद्ध पहचान कर उसे अपना समस्त राज्य और स्वयं अपने आपको उनके श्रीचरणों में समर्पित कर दिया। पद्मसम्भव ने कहा " राजन् ! दुखी मत हो। मेरे क्रिया-कलाप उतने ही विस्तृत हैं जितन कि आकाश। मैं प्रसन्नता और पीड़ा से ऊपर हूँ। मुझे आग जला नहीं सकती मैं अपार सुख का न समाप्त होने वाला एक पिण्ड हूँ।

मन्दारवा ने कांटों से भरे गर्त से बाहर आने के लिए इन्कार कर दिया । तब राजा राजकुमारी के पास स्वयं गये और उसे सारी घटना से अवगत करवाया। राजा ने पद्मसम्भव को शाही वस्त्र,और आभूषणों से सुशोभित कर उन्हें अनेक कीमती हीरे-जवाहरात देकर अपने राज्य सहित पुत्री मन्दारवा को उनके चरणों में अर्पित कर दिया। ऐसा माना जाता है कि पद्मसम्भव से सम्बन्धित सरोवर वर्तमान 'रिवालसर' सरोवर है।

मण्डी से 16 किलोमीटर की दूरी पर समुद्रतल से 5000 फुट की ऊंचाई पर स्थित है। यह तीर्थस्थान हिन्दुओं के लिए भी उतना ही पवित्र है जितना कि बौद्धों के लिए । ऐसा कहा जाता है कि लोमष ऋषि इस स्थान पर निवास किया करते थे। ऐसा उल्लेख स्कन्दपुराण में मिलता है। इस पुराण में यह भी वर्णन आता है कि लोमष ऋषि, गंगा और यमुना नदियों में स्नान किया करते थे। परन्तु ईश्वर की ऋषि पर असीम कृपा के कारण ये दोनों नदियां एक साथ मिल गई और इनके मिलन स्वरूप ही रिवालसर झील की उत्पति हुई[2]।

'त्रीङ-म-पा' साहित्य में मन्दारवा और पद्मसम्भव की कहानी अलग ढंग से बताई गई है पद्मसम्भव जब मन्दारवा के साथ उड़ते हुए लौटते हैं तो राजा इन्द्रवोधि उन दोनों को आग में जला देते हैं। परन्तु आग एक सरोवर के रूप में परिवर्तित हो जाती है। इस सरोवर मे एक कमल खिल उठता है और पद्मसम्भव तथा मन्दारवा कमलदण्ड में निर्विकार विराजमान दीखते हैं ।[22]

पद्मसम्भव एक महान् सिद्ध और तंत्राचार्य थे जिन्होंने कई श्मशानों में

घोर तपस्या करके सिद्दि प्राप्त की थी। स्नेलग्रोव[23] ने तो उन्हें पारम्परिक 84 सिद्धों में रखने की चेष्टा की है। वह सिद्द अवश्य थे परन्तु 84 सिद्धों की पंक्ति में उनका नाम सम्मिलित करना तथ्यों को झुठलाना मात्र होगा। तिब्बत में जाकर उन्होंने कई चमत्कारी क्रिया कलाप किये और त्रीड·-म-पा सम्प्रदाय की नींव रखकर महारहस्य वज्रयानचक्र का प्रवर्तन किया[24] । यही कारण है कि वह वहां अमिताभ के अवतार तथा द्वितीय बुद्द के नाम से प्रसिद्द हुए । परन्तु भोट विद्यानुरागी और तिब्बत के इतिहास तथा संस्कृति के क्षेत्र में मर्मज्ञ कहे जाने वाले विद्वान् पद्मसम्भव को एक भूतासारक अर्थात् भूत-प्रेतों की झाड़-फूंक करने वाले ओझा से अधिक नहीं मानते[25] । राहुल सांकृत्यायन का विचार है कि एक साधारण भिक्षु पद्मसम्भव को आसमान पर चढ़ाने के लिए पीछे के त्रीड·-म-पा सम्प्रदाय वालों ने तरह-तरह की अद्भुत कहानियां गढ़ीं और तिब्बत में उनकी बुद्द से भी अधिक पूजा होने लगी। त्रीड·-म-पा सम्प्रदाय (जिन्हें राहुल प्राचीन कहते हैं) वाले लोग यद्यपि शांतरक्षित को भी अपना नेता मानते हैं परन्तु वे अधिक श्रेय रहस्यपूर्ण व्यक्ति पद्म-सम्भव को ही देते हैं। इस का कारण, उनकी वास्तविकता की अपेक्षा जादू तथा मन्त्र में असाधारण अनुराग है[26] । डॉ० प्रभाकर माचवे ने तो पद्मसम्भव को एक महान् जादूगर की संज्ञा दी है ।[27]

वास्तव में पद्मसम्भव के बारे मे जो भी मिथिक (MYTHS) उनके अनुयायिओं ने प्रचलित किये हैं उन्हें आज के वैज्ञानिक दृष्टिकोण की कसौटी पर परखना तर्कसंगत न होगा । मिथिक हमेशा रहे हैं और इन्सान को उनकी जरूरत भी हमेशा रही है। प्राचीन सभ्यताओं और समाजों के अपने मिथिक थे जोकि धर्म के इर्द-गिर्द घूमते थे वतर्मान युग में हम प्रजातंत्र के मिथिक में विश्वास करने के लिए वाध्य हैं। मार्क्सवाद की अजेयता नामक मिथिक भी बीसवीं शताब्दी का एक बड़ा मिथिक है। लेकिन क्या मिथिक सच्चे हो सकते हैं। मनुष्य मिथिकों को अपनी असुरक्षा को छुपाने की नीयत से घढ़ता है। मिथिकों द्वारा हम सुरक्षा की एक बाड़ लगाकर अपने आपको असुरक्षा की भावना से मुक्त करने का असफल प्रयास करते हैं। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति के बावजूद भी आज का मानव मिथिकों के बगैर नहीं रह सकता। आज के मिथिक विज्ञान, लोकतन्त्र समानतावाद आदि अवधारणाओं पर आधारित हैं। मिथिक देश और काल के प्रवाह से लिए जाते हैं जो ऐतिहासिक चरित्रों को भावातीत स्तर तक ऊंचा उठा देते हैं। आधुनिक युग अपने वैज्ञानिक आचार और ऐतिहासिक पूर्वाग्रहों के कारण मिथिकों के सही अर्थ को नहीं पहचान सकता। हम जानते हैं कि पद्मसम्भव एक शीर्षस्थ सिद्द पुरूष थे। आध्यात्मिक गुरू और नेता के रूप में वे भावातीत अनुभव में गहरे बैठे हुए थे । वे कुछ ऐसी गिनी-चुनी विमुक्त आत्माओं में से थे जिनकी चेतना शारीरिक बन्धनों से ऊपर उठ चुकी थी और सार्वभौमिक चेतना में विलीन हो चुकी थी। जब हम सामान्य शरीरधारी पद्मसम्भव

को अपनी ही तरह एक साधारण व्यक्ति के रूप में देखते हैं और उनके भावातीत अनुभव को अनदेखा कर देते हैं अथवा यूं कहिए कि हम उसे समझने में ही असमर्थ रहते हैं तो हमें सशंयवाद का सामना करना पड़ता है। वस्तुतः हम गुरु रिन्पोछे के व्यक्तित्व को तथाकथित वैज्ञानिक दृष्टिकोण से आंकने में असमर्थ हैं क्योंकि हमारी इन्द्रियों और चित्त की सीमाएं हैं जो उन्हें समझने में बाधक सिद्ध होती हैं। इस प्रकार पद्मसम्भव को महज चमत्कार दिखाने वाला व्यक्ति और भूतापसारक कहना बौद्ध धर्म की घोर निन्दा करने के बराबर होगा ।

पद्मसम्भव ने हिमाचल में बौद्ध धर्म का प्रचार-प्रसार भले ही न किया हो परन्तु जिस श्रद्धा और आदर के साथ उनका नाम इस प्रदेश में लिया जाता है, उससे स्पष्ट है कि बौद्ध संस्कृति को बढ़ावा देने में उनकी भूमिका कितनी महत्वपूर्ण रही है। गुरु रिन्पोछे हिमाचल के बौद्धों के मन में ऐसे रचे-बसे हुए हैं कि सभी सम्प्रदाय उनकी पूजा-अर्चना करते हैं। उनकी मूर्ति लगभग सभी मंदिरों में स्थापित की हुई मिल जाती है। यह उन्हीं की देन है कि हिमाचल के बौद्ध क्षेत्र आज कट्टर धार्मिक गुटबंदी से कितने ऊपर हैं । इस प्रकार पद्मसम्भव के व्यक्तित्व का प्रभाव साम्प्रदायिक सद्भावना और राष्ट्रीय एकता बनाये रखने में भी अद्वितीय रहा है।

सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची तथा टिप्पणियां

1. पद्मसम्भव को तिब्बत में कई नामों से जाना जाता है। गुरु 'रिन्पोछे' के अतिरिक्त उन्हें 'द्वितीय बुद्ध' भी कहा जाता है।
2. Michael Aris and Aung Sa Suu Kyi)eds. , Tibetan Studies in honour of Hugh Richardsous, New Delhi, 1980, p.45
3. from ; खेचुन का तथापि विचार है कि पद्मसम्भव के लगभग 1100 नमधार हैं। देखिए--Biographical Dictionary of Tibet and Tibetan Buddhism edited by Khetsun , Dharmsala, P 121.

3. Michael Aris and Aung Sa Suu Kyi, P 45.

4. उड्डयन नामक स्थान काफी विवादास्पद है। तिब्बती लोग इसे उर-ग्यन कहते हैं। बंगाली परम्परा के अनुसार उड्डयन की भौगोलिक स्थिति नितांत वज्रयान वातावरण में ढूंढनी चाहिए न कि स्वात, काश्मीर, काफिर-स्तान अथवा काश्गर आदि में। इस परम्परा के अनुयायी उड्डयन को ढाका में विक्रमपुर वज्रयोगिनी के साथ जोड़ते हैं। देखिए-डी आर.ए भण्डारकर (स) बी.सी.ला जिल्द-1, भाग-1 कलकता, 1944, हैं। पृ0 से360 तथापि टूची जैसे तिब्बतविदों का कहना है कि उड्डयन स्वात घाटी है जोकि इस समय अफगानिस्तान में है। इस सम्बन्ध में आर.सी.मजूमदार ने विस्तार से लिखते हुए कहा है कि उड्डयन सातवीं शताब्दी में पश्चिमी सीमा पर बसे चार महत्वपूर्ण राज्यों में से एक था जिसमें वर्तमान चार जिलों स्वात, पंजोकरा, बजौर और बुनेर थे जो इस समय अफगानिस्तान में है। देखिए-- आर.सी.मजूमदार (सं),

ए कम्प्रीहैंसिव हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्द-।।।, भाग-।, दिल्ली,1981 पृ0 560 लोकेशचन्द्र ने, तथापि, उक्त सभी सिद्धातों को नकारते हुए उड्डयन शब्द की भाषा वैज्ञानिक व्याख्या करके इसकी पहचान कांची§तमिलनाडु§ से करने का प्रयास किया है। देखिए-- Michael Aris and Aung Sa Suu Kyi, Op. cit,P.73

5. उर-ग्यन ड-दुल, आचार्य पदमसम्भव पृ· 1-2.
§जुलाई 1986 में बौददर्शन संस्कृत महाविद्यालय, केलंग§लाहुल§ द्वारा आयोजित अखिल भारतीय परिसवाद गोष्ठी मे प्रस्तुत निबन्ध§

6 शरत्चन्द्र दस्स लिखते हैं कि धनकोष सरोवर उदयनी ऋषि का आश्रम था। देखिए- Journey to Lhasa and Central Tibet, Delhi, 1970 (Reprint P. 210.

7. Mary Varnham(ed.) Bhutan: Himalayan Kingdom, Thimpu, 1979, P. 22. M.Postel, Antiquities of Himachal Pradesh, Bombay, 1985, P.41.

8. Thubten Jigme Norbu and Colin Turnbull, Tibet: Its History, Religion and People, Middlesex, 1972, P.161.

9. के· अंगरूप, तिब्बत को आचार्य पद्मसम्भव की देन, बुद्धजयंती, 1982, मुजफ्फरनगर पृष्ठ 69-70.

10. Sankalia, The University of Nelanda, Madras, 1934, P. 119, R.K. Mookerjee, Ancienet Indian Education, London, 1947, P. 577.

11. W.Y. Evans-Wentz(ed), The Tibetan Book of the Great Liberation. London, 1954, PP 145-46.

12. Ibid, P. 179.

13. के॰ अंगरूप, 'लाहुली जनजाति को बौद्ध धर्म की देन' पृ0 4 §हिमालयायी कला, साहित्य तथा धर्म का विकास विषय पर गोष्ठी में प्रस्तुत निबन्ध, मनाली, अक्तूबर,87

14. हवेन त्सांग, भारत भ्रमण वृतान्त, द्वितीय भाग, पृष्ठ 210

15. O.C.Handa, Buddhist Monasteries in Himachal Pradesh, Delhi, 1987, P. 57

16. के·अंगरूप, लाहौल-स्पिती तथा किन्नौर में बौद्ध विहारों के विविध रूप और उनका सांस्कृतिक योगदान, सोमसी, जुलाई 1976, पृष्ठ 5.

17. के·अंगरूप, हिमाचल प्रदेश की बौद्ध परम्परा दैनिक ट्रिब्यून, अक्तूबर 23,1986; त्रिलोकनाथ के साथ जुड़ी अनेक जनश्रुतियों का व्यापक उल्लेख प्रो0 के· अंगरूप के शोध लेख रस्-फगस वनाम त्रिलोकनाथ में मिलता है।

(शेष पृष्ठ 33 पर)

च्यवन मुनि और बाण गंगा का महात्म्य

डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा

भृगुवंशीय च्यवन मुनि का कांगड़ा की बाण गंगा नदी के साथ गहरा सम्बन्ध रहा है। इसी बाण-गंगा के किनारे च्यवनमुनि संयम के साथ परिमित आहार लेते थे और घोर तपस्या करते थे। उन्होंने यहां पर एक हजार वर्ष तपस्या की थी। कहते हैं कि एक बार वहां बाण-गंगा के जल में मछेरों ने मछलियां मारने के लिए विशालतम जाल फैंका। उसमें अनेक प्रकार की मछलियां तथा अन्य जलचर फंस गये । मुनि च्यवन भी उस जाल में उलझ गए और वे वहां तप-तेज से तराशे हुए हीरे के समान चमकते हुए दिखाई देने लगे। जाल को मछलियों से भरा जानकर जब उसे बाहर खींचा गया तब मछेरे वहां महान तेजस्वी च्यवनमुनि को देखकर विस्मित हुए। मुनि शाप से डरे मछेरों ने महर्षि च्यवन से प्रार्थना की "हे प्रभो! आप धर्मज्ञ हैं। हमें इस उपेक्षाकृत अपराध से बचाइये। अनजान होने पर ही हमने यह अपराध किया है। अतः मुने! जाल से बाहर आइये और हमारी रक्षा कीजिए । मच्छेरों की इस प्रार्थना से मुनि संतुष्ट हुए और डर से कांप रहे मच्छेरों से कहा-" भो धीवराः! शृणुध्वं मे वचन त्यज्यतां भयम्"।

हे मच्छेरो!, मेरी बात सुनो, डरो मत । जाल में फंसे इन जलचरों को जाल से निकालकर अभी पानी में फैंक दो और जालसहित मुझे राजा के पास ले जाकर उससे मेरे छोड़ने का मूल्य वसूल करो । तब तुम मुझे छोड़कर जाना, अन्यथा मैं तुम्हें शाप देने वाला हूं। शाप से डरे वे मुनि के कथनानुसार जाल सहित मुनि को लेकर कुशिक नामक राजा के पास पहुंचे और नतमस्तक होकर बोले-"भो नृपोत्तम विक्रेतुं च्यवन वयमागता"। अर्थात हे नृपोत्तम ! हम च्यवन मुनि को बेचने के लिए आये हैं। आप छोड़ने का मूल्य चुकाकर अभी मुक्त करवा लीजिए । मच्छेरों की बात सुन राजा आश्चर्य चकित हुआ और जाल में फंसे मुनि को नम्रता से प्रणाम करके क्रोधपूर्वक कहने लगा- "अरे इस मुनिवर को अभी छोड़ दो" । राजा के इस कथन को सुनकर च्यवन मुनि बोले- हे राजन! आप अगर इन मच्छेरों को मेरा मूल्य चुका दें, तभी मैं जाल से बाहर आ सकता हूँ। बिना मूल्य चुकाये भला मैं कैसे बाहर आ सकता हूं। इन जाल जीवी मच्छेरों का निर्वाह मेरे मूल्य द्वारा ही सम्भव है। इस धर्म को तो आप अच्छी तरह जानते

हैं"। मुनि की बात सुन कर राजा प्रसन्न होकर कहने लगा- "हे मुनि श्रेष्ठ मैं इन मच्छरों को बहुत धन दूंगा । अतः मैं आप से प्रार्थना करता हूँ कि आप जाल से बाहर आ जाएं क्योंकि मैं आपको जाल में बन्धा हुआ नहीं देख सकता हूं" ।

राजा की बात सुनकर पुनः बोले- "राजन! मतुलितं द्रव्यं दातु-मिच्छति चेद विभो"। हे राजन ! अगर आप मेरे बदले इन मछेरों को मेरे बराबर धन देना चाहते हैं तो अभी बिना सोच-विचार किये दे दीजिए और मुझे छुड़ा लीजिये। मुनि के कथनानुसार राजा ने तत्काल एक सुन्दर तुला{लकड़ी} मंगवाई। उसके एक पलड़े पर जाल समेत मुनिच्यवन को बिठाया और दूसरे पर धन रखकर उन्हें तोलने लगा । पलड़े पर रखा बहुत सा धन भी जब मुनि के भार के बराबर न हुआ तब और धन लाकर रखा गया, यहां तक कि कोषागार का सारा सोना, चान्दी, बहुमूल्य मणि-रत्न आदि धन चढ़ा देने पर भी पलड़े का भार मुनि से कम ही रहा । अब राजा ने अपने तथा अपने परिवार के सारे भूषण, बहुमूल्य रेशमी वस्त्र और ताम्बे, पीतल एवं कांसे के सारे बर्तन तकड़ी पर चढ़ा दिए तो भी उन सभी से मुनि का भार अधिक ही निकला ।

राजा ने अपने तथा अपने पुत्र के महलों में सभी उपकरणों को मंगवाकर पलड़े पर रख दिया। किन्तु फिर भी वह मुनि के भार से कम ही निकला। अब नगर-प्रशासन और नगर निवासियों के धनादि की बारी आई और उसे भी मंगवाकर पलड़े पर चढ़ा दिया गया । जब वह भी मुनि तुल्य न हुआ, तब राजा विस्मित होकर गहरी चिन्ता में डूब गया । अन्त में राजा ने हाथी,घोड़े, रथादि सेनांगों सहित अपने राज्य को दांव पर लगा दिया। किन्तु जब वह भी कम रहा, तो वह सपरिवार स्वयं पलड़े पर जा चढ़ा। किन्तु तब भी मुनि का पलड़ा झुका ही रहा। अब शोक-सागर में डूबे राजा ने प्रतिज्ञा रूपी धर्म के टूटने के भय से आत्मत्याग का ही निश्चय कर लिया । शोक से उदिग्न सत्यसन्ध राजा और प्रतिज्ञरूपी धर्म में उसकी आस्था को देख मुनि परम प्रसन्न हुए और बोले- भो राजन! परितुष्टस्ते धर्मणाहं नृपोत्तम " अर्थात हे राजन! धर्म में तुम्हारी आस्था को देखकर मै अति प्रसन्न हूँ। अतः तुम प्रतिज्ञाभंग से होने वाली धर्म-हानि की चिन्ता मत करो। मेरी बात सुनो और तत्काल उस पर आचरण करो। ऐसा करने पर तुम्हारी प्रतिज्ञा भंग नहीं होगी ।

हे राजन! तुम धर्म हानि से बचने के लिए सोने के भूषणों से सजी हुई कपिला गौ लाओ और उसके साथ मुझे तोलो तथा अपनी इस सम्पति समूह को हटा लो। मुनि की बात सुन राजा प्रसन्न हुआ और कपिला गौ से मुनि को तोला। अब वह मुनि से समतुलित हुई । राजा ने उसे मछेरो को दे दिया और जाल से मुनि को निकाल कर उसकी अर्घ्य आदि से पूजा की। राजा के उस अद्भुत कार्य से मुनि को हार्दिक प्रसन्नता हुई। मुनि ने आशीर्वाद देकर राजा का अभिनन्दन किया और मछेरों को लेकर

बाण-गंगा के तट पर पहुंचे। बाण-गंगा में यथाविध स्वयं स्नान किया और मच्छेरोंको भी करवाया फिर वे उनके हित के लिए उनसे कहने लगे- रे मच्छेरो! मेरी बात ध्यान से सुनों। तुम्हें यह कपिला गौ मेरे द्वारा ही मिली है अगर तुम अपना कल्याण और मुझे प्रसन्न करना चाहते हो तो इसे भक्ति के साथ मुझे ही दे दो" । यह सुनकर मच्छरे बहुत प्रसन्न हुए और वहीं बाण-गंगा पर कपिला गौ का यथाविधि दान च्यवन मुनि को दे दिया। उस दान से मच्छेरों का तो सारा कुल ही तर गया और उन्हें अनश्वर सम्पति प्राप्त हुई। उस समय मुनि ने बाण -गंगा को वरदान देते हुए कहा:-

"पापानां हानये चैषा बाणरूपा भविष्यति ।
अतश्च बाण गङ्गेतिरव्याता भुवि भविष्यति ।। ।।
अस्यां स्नात्वा विधिवच्च भगवत्याश्च दर्शनम् ।
करिष्यन्ति जनास्तेषां तीर्थ-यात्रा फलिष्यति ।।2।।
अस्नात्वा ये करिष्यति देव्या दर्शन भेव च ।
न तेषाञ्च फलं सम्यग् भविष्यति शुभ प्रदम् ।।3।।

अर्थात् पाप हानि के लिए यह नदी बाण-रूप होगी अतः इस बसुधा तल पर इसका नाम बाण-गंगा प्रसिद्ध होगा ।

जो यात्री इसमें स्नान करके यथाविधि भगवती ब्रजेश्वरी के दर्शन करेंगे, उनकी तीर्थ-यात्रा सफल होगी और इसमें स्नान किये बिना जो भगवती के दर्शन् करेंगे उन्हें यात्रा का कल्याण कारी फल नहीं मिलेगा। इसमें स्नान करके जो व्यक्ति सोने के सींगो वाली, चान्दी जड़े खुरो वाली, मोती जड़ी पूंछ वाली, मूंगे की माला से युक्त वस्त्र से ढकी, ताम्रपृष्ठी और संवत्सा कपिला गौ का कंस के दोहन पात्र के साथ दान करता है वह मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है। इसलिए यथाक्रम बाण-गंगा में स्नानकरकपिला गौ का दानकरफिर देवी का दर्शन करना चाहिए । जो ऐसा करता है उसके दुष्कर्म तत्काल नष्ट हो जाते हैं।

हिमाचली लोक नृत्यों में ताण्डव का प्रभाव

डॉ० सूरत ठाकुर

नृत्य का जन्मदाता भगवान शिव को माना गया है। जिनके विराट नृत्य से विश्व की पञ्च क्रियाओं-सृष्टि स्थिति, संहार, तिरोभाव और आविर्भाव का जन्म हुआ है और स्वर ताल का स्वरूप निर्दिष्ट हुआ है। प्राचीन शिल्पकारों की बनाई हुई शिव मूर्ति को देखने से विदित होता है कि नटराज चार हाथ वाले देवता हैं। जिनके माथे पर मणियुक्त चन्द्रमा, जिनके बाल नृत्य की ताल पर झूमते हैं, जटा में गंगा अवतीर्ण होती है और उसके आस-पास जटा में सर्प लिपटे हुए हैं तथा कानों में कुण्डल धारण किये हुए हैं। दाहिने हाथ में डमरू और बांया हाथ अभयदान मुद्रा में है।

भगवान शिव श्मशान में काल रात्रि के समय भूत-प्रेतादि के साथ संहार नृत्य करते हैं। इनके ताण्डव में मृत्यु की भीषणता, संहार की भयंकरता और क्रोध की विंकरालता बताने वाला अभिनय और मुद्राएं होती हैं। यह नृत्य विश्व में चल रही संहार प्रक्रिया का प्रतीक है। ताण्डव पुरूषों का नृत्य है, भरताचार्य कृत "संगीत नृत्याकर" के आधार पर :-

वीररसे महोत्साहो पुरूषो यत्र नृत्यति ।
रौद्र भाव रसोत्पत्तिस्तु ताण्डवमिति स्मृतम् ।।

ताण्डव पुरूषों के अंग चापल्य ,वीरत्व, क्रोध तथा रौद्र रस की भावनाएं दर्शाने के लिए बहुत उपयुक्त होता है। विश्व की पन्च क्रियाओं के अतिरिक्त आसुरी भावना पर दैवी भावना की विजय और उससे उत्पन्न अत्यन्त आनन्द का द्योतक है।

हिमाचल प्रदेश में प्रचलित लोक नृत्यों में बहुत से ऐसे लोक नृत्य हैं जो ताण्डव का भाव दर्शाते हैं। ये नृत्य डमरू, ढोल, नगाड़े, ढोलक, ढौंस, वाम और डक आदि लोक वाद्यों की गरजदार आवाज़ पर इनमें वीर रौद्र आदि भावों का संचार करते हैं। इन लोक नृत्यों में यहां के लोक जीवन के उद्यम स्वभाव गति की तीव्रता अंग संचालन में आकस्मिकता, कठोर मुद्रा छोटे-छोटे आवेशपूर्ण नृत्यों के अविकल रूप में यहां के जीवन की दुर्गम प्रकृति और कठिन कर्म, धार्मिक सामाजिक तथा सस्कारों की छाप मिलती है। ताण्डव क्रिया को दर्शाने वाले हिमाचल के लोकनृत्य इस प्रकार हैं:-

डंडारस नृत्यः- डंडारस नृत्य चम्बा जिला के भरमौर क्षेत्र में नाचा जाता है। इसलिये इसे गादी नृत्य भी कहा जाता है। गादी लोग हंसमुख, मेहनती और रंगीन तबीयत के होते हैं। इनका शरीर पहाड़ी रास्तों, जंगलों, पर्वत चोटियों में चलकर तथा मेहनत करके हृष्ट-पुष्ट होता है। कड़ी मेहनत के बाद ये अपने आराम के क्षणों को हंसी-खुशी नाच गा कर व्यतीत करते हैं।

डंडारस नृत्य पूर्णतया पुरूषों द्वारा नाचा जाता है। यह नृत्य शिवजी के ताण्डव का ही समरूप है। जिस प्रकार ताण्डव में हस्त मुद्राओं के अतिरिक्त कटिमुद्राओं के द्वारा भावों को व्यक्त किया जाता है उसी प्रकार डंडारस लोक नृत्य में हाथों और कमर की विशेष मुद्राएं होती हैं। यह नृत्य प्रायः बोल मणीमहेश की जय" की गूंज के साथ ही शुरू किया जाता है। इसमें दक्षता की आवश्यकता नहीं होती, अपितु एक गोलाकार चक्र में सभी नर्तक नर्तन करते हैं। नाचते हुए नर्तक जब चोला घुमाते हैं तोवेछतरी की तरह सुन्दर रूप धारण करता है। नृत्य में एक नर्तक मुखिया का काम करता है और अन्य उसका अनुसरण करते हैं। यह नृत्य मेले, जन्म, विवाह तथा फसल कटाई आदिकेअवसरों पर किया जाता है। गाद्दी लोगों की मान्यता है कि जबकभी गांव पर कोई संकट आ जाता है और भगवान शंकर की कृपा से इनका संकट दूर हो जाता है तो ये लोग भगवान् शंकर की मनौती के रूप में गांव में मंदिर के आंगन में इकट्ठे हो कर इस नृत्य को करते हैं। इसमें नगाड़े और डमरू{योहल} का विशेष नाद होता है। डंडारस नृत्य में अधिक से अधिक दो सौ नर्तक एक साथ नाचते हैं।

सेन नृत्यः- सेन नृत्य पांगी क्षेत्र का एक धार्मिक नृत्य है। यह नृत्य बुराई पर अच्छाई की विजय का प्रतीक है। इसमें रोद्र रस का स्त्रोत बहने लगता है। इस नृत्य में एक प्रकार की असभ्यता, गूढ़ता, अद्भुतता और भयानकला का समावेश रहता है।

पांगी क्षेत्र में प्रचलित इस नृत्य में लोकगीत नहीं गाये जाते, केवल बांसुरी की धुन पर और ढोल की लय पर नर्तक नाचते हैं। पुरूषों द्वारा नाचा जाने वाले इस नृत्यमेंचापल्य और अभिनय का अत्यन्त जोश भरा होता है। इसमें सबसे आगे नाचने वाले नर्तक को "अगुआ" कहते हैं, बाकी के नर्तक उसका ही अनुसरण करते हैं।

इस नृत्य को करते समय अगुआ के हाथ में कुल्हाड़ी होती है जिसे वह घुमाता रहता है। इस नृत्य को प्रायः{उल्टा} आगे से पीछे को नाचा जाता है उल्टा नाचने के विषयमेंजनश्रुति है कि एक बार मेले में यह नृत्य हो रहा था, नृत्य के बीच ही एक राक्षस पुरूष का भेस बनाकर नर्तकों के मध्य नाचने लगा। उसका उददेश्य किसी नर्तक की जान लेना था । परन्तु यह राक्षस का दुर्भाग्य ही रहा कि नृत्य करते दो भाइयों सन्नो और कर्मू को उसकी असलियत का आभास हो गया। उन्होंने अगुआ को संकेत किया कि वह आगे को कदम बढ़ाने की अपेक्षा पीछे को कदम हटाये। इसी के

साथ उन्होंने धार्मिक मन्त्र बोलना भी शुरू किया। पांगी क्षेत्र में यह भी विश्वास किया जाता है कि राक्षस उल्टा नहीं नाच सकता है। अतः अगुओं ने जब उल्टा नाचना शुरू किया तो राक्षस को उल्टा नाचने का तरीका नहीं आया और लड़खड़ा गया जिससे उसकी असलियत का पता लग गया और सब नर्तकों ने ताण्डव रूप धारण करके राक्षस को चारों ओर से घेर लिया तथा नाचते नाचते ही हाथों एवं लातों से प्रहार करते-2 मार डाला। उसी दिन से इस नृत्य का प्रचलन भी उल्टा हो गया ।

सुहाल नाटी:- सुहाल नाटी भी चम्बा क्षेत्र में प्रचलित ताण्डव का ही एक रूप है। इस नृत्य में केवल पुरुष ही बांसुरी की धुन और नगाड़े की लय पर नाचते हैं। नर्तक प्रायः अपने हाथों को सिर के ऊपर और सामने फैलाते हुए नाचते हैं। टांगों की उछल-कूद इस नृत्य की विशेषता है । इस नृत्य के विषय में भी एक कथा प्रचलित है। कथा इस प्रकार है :-

एक बार जब वाणासुर ने भगवान शंकर की घोर तपस्या करके वर प्राप्त किया कि वह जिसके भी सिर पर हाथ रखे तो वह भस्म हो जाये। वरदान की परीक्षा हेतु उसने सबसे पहले शंकर भोले के सिर पर ही हाथ रखना चाहा । उसकी कृतघ्नता का आभास जब शिवजी को हुआ तो वे जान बचा कर दौड़े। दौड़ते-दौड़ते जब भगवान विष्णु के पास पहुंचे तो भगवान विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण करके बाणासुर को अपने साथ नचाया था और नाचते-नाचते बाणासुर का अपना हाथ अपने ही सिर के ऊपर उठा तो वह स्वंय ही वरदान की शक्ति से भस्म हो गया । इसी कथा के आधार पर यह नृत्य किया जाता है।

सुहाल नाटी में एक व्यक्ति बाणासुर का भेष धारण करता है। उसकी कमर में कुल्हाड़ी लटकी हुई होती है और घास के वस्त्र पहनता है। इस नाटी में नर्तक अपने सिर के ऊपर जब हाथ चलाते हैं तो वह बाणासुर भेष धारक भी अपने सिर के ऊपर हाथ चलाता है। जो इसके भस्म होने का प्रतीक है।

मौंगला नृत्य:- ताण्डव नृत्य का स्वरूप कुल्लूवी लोक नृत्यों में भी देखने को मिलता है। यहां का मौंगला नाम का नृत्य ताण्डव की भान्ति रौद्र रस का द्योतक है। यह नृत्य द्रुत गति में ही किया जाता है। इसके प्रारम्भ में एक नर्तक अपने कानों पर दोनों हाथ रख कर भाउन्स गीत गाता है। उसके साथ दो चार नर्तक उसका साथ देते हैं। यह नृत्य केवल पुरुषों द्वारा किया जाता है।

बांढू या राक्स नृत्य:- कुल्लू में प्रचलित पुरुषों के इस नृत्य को स्त्रियों को देखना वर्जित होता है। क्योंकि इसमें अश्लील गीतों को गाते हुए अश्लील हरकतें की जाती हैं। यह नृत्य केवल माघ मास में किया जाता है।

इसमें नर्तक अपने-2 हाथों में जलती हुई लकड़ी की मशाल लेकर अपने-अपने घरों से निकल कर सुबह चार बजे के लगभग गांव में निर्मित देवी-देवताओं के प्रांगण में इकट्ठे हो जाते हैं। एकत्रित होने पर वे सभी नाचते हुए गांव से बाहर एक या दो किलोमीटर दूर नाचते हुए जाते हैं। एक निश्चित स्थान पर पहुंच कर वहां आधे घण्टे तक अढ़ाई चक्कर लगा कर वापिस मन्दिर के आंगन में पहुंच जाते हैं। वहां एक दूसरे को नये वर्ष की शुभ कामनाएं दी जाती हैं और हाथ की मशालों को एक जगह इक्टठा करके जलाया जाता है। जिसे "जागरा" कहा जाता है फिर "जागरे" के चारों ओर नृत्य किया जाता है। यह नृत्य प्रायः शराब के नशे में किया जाता है यहां एक किंवदन्ती के अनुसार इस नृत्य से राक्षसों जैसी हरकते करके उन्हें गांव से दूर भगाया जाता है।

खड़ायत या तलवार नृत्यः- खडायत नृत्य कुल्लू के लोगों के बहादुरी का प्रतीक है। इसमें दो-दो नर्तक अपने-अपने हाथों में तलवारें लेकर दौड़-दौड़ कर एक दूसरे के आमने सामने होकर नाचते हैं। इसे देखने से ऐसा लगता है कि वे आपस में लड़ रहे हैं। कभी-2 नर्तक हाथ से हाथ पकड़ कर दौड़ते हुए एक गोल दायरा बना देते हैं। और एक जगह रूक कर चक्र लगाते हैं। इसमें वीरता की झलक स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। एक लोक कथा के अनुसार एक बार कुलूत देश का राजा लड़ाई से जीत कर वापिस अपनी रियासत में आया तो उसके सैनिकों ने अपने दोनो हाथों में तलवारें लेकर लड़ाई का प्रदर्शन खडायत के रूप में किया तभी से इस नृत्य का प्रचलन कुल्लू में हो गया।

देउखेलः- "देउखेल" का अर्थ देवताओं का खेल है। यह एक धार्मिक नृत्य है। लोगों की मान्यता है कि इसमें देवता अपने चेले के शरीर में प्रवेश कर के नाचता है। जब गांव के देवी या देवता की पुण्यतिथि या विशेष पर्व, होता है, उस दिन गांव के लोग बारी-2 से देवपूजन करते हैं, तत्पश्चात् देवता के मन्दिर के प्रागण में चेले द्वारा नृत्य किया जाता है। इस नृत्य में चेला देवता के अस्त्र-शस्त्रों को हाथ में घुमा कर नृत्य करता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्राकृतिक दुर्गमता, एवं सौन्दर्य युक्त प्रदेश के हंसमुख और मेहनती लोग जब भी नृत्य करते है, तो भगवान शिव के समान खुश होकर मस्ती में झूमने लगते हैं।

ताण्डव के प्रभाव वाले हिमाचल के लोक नृत्यों में केवल पुरूष वर्ग ही नाचते हैं। इनमें स्त्रियों का नाचना वर्जित माना जाता है। इन लोक नृत्यों के अतिरिक्त भी बहुत से ऐसे लोकनृत्य हैं। जिनमें ताण्डव नृत्य का रूप देखने को मिलता है।

हिमाचल के लोक - गीतों में रामायण

श्यामा ठाकुर

आदि कवि बाल्मीकि ने रामायण के दूसरे अध्याय में लिखा है कि जब तक इस धरती पर पहाड़ खड़े हैं और नदियां बहती रहेंगी तब तक संसार में रामायण मानव हृदय को आन्दोलित करती रहेगी और आज हजारों वर्ष बीत जाने पर भी महर्षि का यह कथन शब्दशः सत्य है । भारतीय समाज में जो स्थान रामायण को प्राप्त है, वह सम्भवतः किसी और पुस्तक को प्राप्य नहीं है। देश भर में कोई ऐसा परिवार न होगा जहां रामायण श्रद्धा और सम्मान से पढ़ी न जाती हो। वर्ष भर घर-घर में कहीं न कहीं रामायण पाठ होता रहता है परन्तु रामनवमी, दशहरा और दीवाली रामकथा के विशिष्ट दिन हैं। बच्चे, बूढ़े, जवान, स्त्री,पुरुष सभी इकट्ठे हो कर नगरों, कस्बों, शहरों और गांवों में रामायण बड़ी श्रद्धा से सुनते और अपने आप को आनन्दित करते हैं ।

यह भी सत्य है कि भारतीय समाज में राम कथा की परम्परा जितनी महान रही है, उतना ही इसका स्वरूप भी बहुरंगी विविधता अपनाए हुए है । यह भी लम्बे इतिहास में युग-युगान्तर से अनेक विद्वानों, महापुरूषों, साधु-सन्तों की लेखनियों और वाणियों द्वारा परम श्रद्धा से अनेक रूप से गाई तथा प्रसारित की जाती रही है। मूल रूप में राम कथा एक रहते हुए भी इसका स्वरूप हर युग में और हर समाज में परिस्थितियों के अनुरूप बदलता रहा है। किसी समाज के विशेष समय में जिस बात की अपेक्षा रही है, राम कथा को उसी अनुसार मोड़ मिलता रहा है।

शिष्ट साहित्यिक ग्रंथों में जिस प्रकार रामायण की कथा अनेक रूप में पढ़ने को मिलती है, वैसे ही वह लोक-मानस में भी बहुरंगी वेशभूषा पहने हुए मिलती है। इस दृष्टि से हिमाचल प्रदेश की पहाड़ी जनता पर रामायण का जितना प्रभाव पड़ा है, शायद उतना प्रभाव किसी अन्य धार्मिक ग्रन्थ का नहीं पड़ा है। यह बात यहां के लोक-गीतों के बाहुल्य से स्पष्ट हो जाती है। यहां के लोक गीतों में जो रामायण गाई जाती

है उनके अनेक स्थल लिखित रामायण से मेल नहीं खाते । किन्नौरी लोक गीतों के अनुसार पुत्र प्राप्ति के लिए दशरथ ने सामान्य यज्ञ नहीं किया था, बल्कि सात ऋषियों के सामने तीन वर्ष तक अश्वमेध यज्ञ किया था, तब तीन रानियां गर्भवती हुई थीं :-

सन्तानु तांगे सा ले, अश्मो यज्ञ लानग्योशा ले ।
सात ऋषियों ओमस्को याले, शुम बौरशांग जोग लानग्योशा ले ।
शुम बौरशांग लानग्योशाले, शुम रानी गुरबिना ले ।।

{सन्तान की खातिर, अश्वमेध यज्ञ किया । सात ऋषियों के सामने तीन वर्ष यज्ञ किया । तीन वर्ष यज्ञ करके तीन रानियां गर्भवती हुईं। }

शिष्ट साहित्य के अनुसार राजा दशरथ ने सन्तानोत्पत्ति की इच्छा से श्रृंग-ऋषि से पुत्रेष्टि यज्ञ कराया था । पहाड़ी लोक गीतों में श्रृंग ऋषि का नाम तो आता है परन्तु सन्दर्भ कुछ भिन्न है । श्रृंग ऋषि हिमालय की इन पहाड़ियों में ही रहते थे। आज भी वे कुल्लू ज़िला के बंजार के निकट देवता के रूप में पूजे जाते हैं। कांगड़ा क्षेत्र के एक लोक-गीत के अनुसार राजा दशरथ के दुख को जान कर इन्द्र ने कहा कि यह सब श्रृंग-ऋषि के श्राप के कारण है। वे अन्न नहीं खाते परन्तु यदि राजा के हाथ का अन्न खा लें तो पुत्र प्राप्ति हो सकती है। राजा ने यह काम अपनी अप्सराओं को सौंपा। उन्होंने बेसन के लड्डू बना कर वृक्षों पर लटका दिए और ऋषि ने उन्हें फल जान कर धोखे में खा लिया । तभी राजा दशरथ हाथ जोड़ कर उपस्थित हुए और अपनी व्यथा सुनाई । ऋषि ने उन्हें एक फल दिया कि वह रानियों को खिला दें। राजा ने फल कौश-ल्या को दिया । कौशल्या ने कैकेई को बुलाया और आधा फल उसको देकर जब खाने लगी तो सुमित्रा पहुंच गई। दोनों ने अपने-अपने आधे भाग से काट कर सुमित्रा को फल के टुकड़े दिए । परिणामस्वरूप कौशल्या के राम, कैकेई के भरत एक-एक पुत्र हुए और सुमित्रा के लक्ष्मण और शत्रुघ्न दो -

इक दिन इन्द्र राजें अगै जसरथ दुख-सुख लांदा ।
तीरथ हंडे दान-पुन्न कित्ते, बांहज असंया मन पछतांदा ।
सुन राजा दशरथ तू भोला, तिजो श्राप ऋषि श्रृंगी दा ।
जे सैह तेरा अन्न ले खाई, ता तेरे घर अंसया आई ।
राजे अछरां सद्दिया, सैह सौ-सौ चालां करना चलिया ।
बेसण दे फल तिन्हे बणाए, रूखा ने जाई लटकाए ।
रिखिए औंदे फल जो दिखे, लाल रोंगले बांके मिट्ठे ।
जां तोड़ी मुहं च पाए, अन्न खाई धोखे च आए ।

हत्था जोड़ी राजा दसरथ निकले, रिखीए दे चरण जाई पकड़े।
बोल राजा तू क्या है चांहदा, कैंह तेरा मन कुरलांदा ।
तां राजे सब कथा सुनाई, अंसया दी देओ बिध बताई ।
लैह राजा तू फल ए मेरा, राणी खाए पुत्रां पाए ।

इस प्रकार रामायण की कथा परम्परागत होते हुए भी पहाड़ी जनमानस में कई सन्दर्भ अपना स्वतन्त्र रूप लिए हुए है। जहां सन्दर्भ समरूप भी हो तो भी लोक कवियों का वर्णन हृदय-स्पर्शी होता है। भ्रातृ प्रेम की गम्भीरता मण्डी क्षेत्र के एक लोक-गीत में कितने मार्मिक शब्दों में परिलक्षित होती है :-

राम भी आए बीर लछमण आए
उठ भाई गले मिली ले, उठ भ्राता गले मिली ले ।
जौ भी पाके, गेहूं गदराए
चन्ने ओ पई गई दांची
गले मिली ले, उठ भ्राता गले मिली ले ।

राम कथा में इस तरह के परिवर्तन स्थानीय विचारधारा के अनुरूप बड़े स्वाभाविक हैं। ऐसा एक परिवर्तन कैकेई के बारे में है। जो काम कैकेई ने किया, उसकी आशा सामान्य महिला से नहीं की जा सकती । विशेष रूप से पहाड़ी लोक-मानस जो स्वच्छता से भरा है, कैकेई के कुकर्म को महिला रूप में ग्रहण नहीं कर सकता । अतः स्थानीय परम्परा के अनुसार कैकेयी राक्षसों की धियायण अर्थात् दुहिता थी। श्रवण के मारे जाने पर जब नेत्रहीन माता-पिता ने प्राण दिए तो दशरथ को पुत्र-वियोग में मरने का श्राप दे कर इच्छा की थी कि उन्हें उस जगह जलाया जाए जो अनदागी हो। दशरथ को जब ऐसी कोई जगह न मिली तो राजा ने दायें हाथ पर चिता जलाई और बायें हाथ से आग लगाई । परन्तु राजा की छोटी उंगली जल गई । राजा कौशल्या और सुमित्रा के पास कई रात बार-बार गया, पर लाख प्रयत्नों के बावजूद वे राजा को आराम न दिला सकीं। जब कैकेई के पास गया तो रात को कैकेई ने उंगली का सारा पीक-मवाद चूस डाला । राजा आराम से सो गया और जब राजा ने प्रसन्न हो कर कैकेई को मुंह मांगा दान देने का वचन दिया तो कैकेई ने भरत को राज और राम को बनवास मांगा । यथा :-

असां मरदे मोयां बजोगे
जीदंया रे लगण बजोग तिजो
अणदागी कोई बाहर जे मिले
दशरथ चुकी तिन्हा फिरदा

अणदागी कोई ठाहर नी मिलदी ।
ता दहणे हत्थे पर चिला जे चिणदा,
बाएं हत्थे ने अग लगांदा ।
झम्बी-भम्बी सेज बछाई राणी कुसल्या
तेल कटोरी पाया बे
राणी सिरा झसे, पैरा झसे ।
राजा निन्दर न औए जी ।
तीजी रात वे राजे रोंदी गई
कैकेई दे महला जो जांदा जी
मितलुआ खोड़े कैकेई राणीए, उंगली सह पीड़ बड़ी भारी जी ।
झम्बी-झाड़ी सेज लगाई राणीए,
उंगल सैह मुंहे मंझ पाई जी ।
तैं बडड़े तां द्रोह कमाए राणीए
रामा जो बणवास दुआया,
ते भरते जो राज दुआए जी ।।

कविवर मैथिली शरण गुप्त जब इन पंक्तियों में श्री राम-महिमा का गुणगान करते हैं :-

"राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाए सहज सम्भाव्य है।

तो इन शब्दों में शाश्वत सचाई की अभिव्यक्ति होती है । कवि चाहे शिष्ट साहित्य का हो या वह लोक कवि हो, उसका कवित्व श्रीराम के सन्दर्भ में स्वतः प्रस्फुटित होता है। श्रीराम ऐतिहासिक पुरूष थे, अवतार थे या कवि, यह विषय विचारणीय नहीं है परन्तु यह स्पष्ट है कि सभी रामगायकों ने महाकाव्य के नायक राम में उन गुणों को पाया है जो सदैव, सर्वत्र और स्वतः पुरूष को पुरूषोत्तम बनने की ओर संप्रेरित करते हैं। यह कारण है कि समस्त भारतीय समाज में राम और रामायण को विशिष्ट श्रद्धा और सम्मान प्राप्त है। श्रीराम का चरित्र गुणात्मक, रसात्मक,मर्यादा-रक्षक और सर्वसद् गुणसम्पन्न है। उनका जीवन नर और नारायण, भगवान और पुरूष का समन्वय प्रस्तुत करता है। इसीलिए पहाड़ी लोक-मानस पुत्र जन्म के अवसर पर सर्वसाधारण नर में नारायण के गुणों की अपेक्षा करता है:-

मेरे निके-निके ने जन्म लिया
मेरे घरे राम ने जन्म लिया
बधाईयां मेरे राम जी ।

जागो जागो दाईए जी माईए जी,
आंगण जे तेरें महाराज खड़े ।
ढोल नगारे बजण बाजे
हारे रुण-झुण जत्र जड़े जी,
बधाईयां मेरे राम जी ।

यह पुत्र जन्म का दृश्य है। वस्तुतः हर मां के लिए उसका पुत्र नारायण होता है। वह उसके तप की सबसे बड़ी सिद्दि और मातृत्व की सबसे बड़ी निधि होता है। उसके साथ न जाने उसके कितने स्वप्न जुड़े होते हैं, जो ऐसे ही अवसरों पर गीत के स्वर में मुखर हो आते हैं:-

एसा जुधिया नगरीया
जन्म लेआ नारायणे जी ।
जुधिया नगरीया जन्म लेआ
राजा राम जन्म पाया जी।
ताइयां ता चाचीयां सारीया भैणा,
लोरीया देवण आया जी।
एसा जुधिया नगरीया
जन्म लिया नारायणे जी ।

पुत्र-जन्म लोक-जीवन में असीम उल्लास की अभिव्यक्ति का अवसर होता है ।ऐसे अवसर पर लोक-मानस आशाओं की भावधारा में पल्लवित हो उठता है। पुत्र-प्राप्ति के साथ कितनी ही आशाएं जुड़ी होती हैं और इन आशाओं की पूर्ति के लिए यह पुत्र में श्रीराम के गुणों के समावेश की कामना करता है और इसके विपरीत यदि पुत्री जन्म लेती है तो भी यही प्रार्थना रहती है कि कन्या का विवाह मर्यादा पुरुषोत्तम राम के साथ हो :-

उच्चे महलां तुसा आ बसे
जिहदे घर कन्धा कुआरी रामा ।
कुण व्याहे तेरी कन्या कुआरी,
कुण तोड़े तेरे धनुष रामा ।
राम चन्दर व्याहे मेरी कन्या कुआरी
सह ही तोड़े मेरे धनुष रामा ।

श्री राम शील, शक्ति और सौंदर्य की प्रतिमूर्ति हैं। सीता के प्रति राम के आन्तरिक स्नेह में पति के वे सब गुण अंकित है जिनकी प्रत्येक स्त्री कामना करती है। श्रीराम के दाम्पत्य जीवन में मर्यादा है, संयम है। अनुरागी और गृहस्थी राम का

ज़ीवन बड़े आदर्श का जीवन है। इसमें सच्चे प्रेम की सरसता और स्निग्धता का परिचय मिलता है। इसीलिए पहाड़ी लोक-गीतों में कन्या कौमार्यपन की शालीनता का उल्लंघन करती हुई भी स्वयं ही श्रीराम को वर रूप में मांगती है ।

बापूजी इक मेरा कहना कीजिए,
मिंजो राम रतन वर दीजिए,मेरे राम ।
सोने से दान बाबल नित करदा ।
सवेरे उठी करदा कन्या रा दान, मेरे राम ।
रूपे रा दान चाचा नित उठी करदा,
सवेरे उठी करदा कन्या रा दान, मेरे राम ।

और यह दान बाबुल और चाचा तक ही सीमित नहीं रहते। कन्या के विवाह पर ताया, दादा, मामा, नाना सभी दान करते हैं। यह ठीक है कि पुत्री के जन्म पर वे खुशियां नहीं मनाई जातीं जो पुत्र के जन्म पर मनाई जाती हैं परन्तु कन्या को यह सौभाग्य विवाह के दिन प्राप्त होता है।

पहाड़ी लोक-गीतों में श्रीराम उल्लेख प्रमुखतः इन्हीं संस्कार गीतों में मिलता है। कांगड़ा क्षेत्र के संस्कार गीत में इसका बड़ा मार्मिक चित्र प्रस्तुत होता है:-

हरे हरे गोए ने आंगण लिपा जी,
सुच्चा चौका दुंआओ, मेरे राम,
बड़े भाग तिसा माता कोसल्या दे
जिन्ने बेटा राम चन्द्र जायो मेरे राम ।
सब दिन उतरी चलो मेरी रजनी
सह रजनी राजा दशरथ दे घर राम ।
बड़े भाग तिसा तुलसीया दाईया दे,
जिन्नी हरी कुण्ड नुहायो मेरे राम ।
बड़े भाग तिस विशिष्ट परोहता दे,
तिन्नी खरा जेहा लगन लगायो मेरे राम ।

ऐसा ही महत्वपूर्ण चित्रण तुलसी-पूजन के समय का है। पहाड़ी लोक-मानस प्रत्येक स्मरण-भजन कथा-गायन विवाह-जन्म में रामायण का भरपूर उपयोग करते हैं परन्तु रामायण महाकाव्य के कथानक को अपनी परिस्थितियों के अनुकूल ढाला है। मंगल कार्य करते समय लोक मानस यों गा उठता है:-

किसदे हुंदे बाग-बगीचे,
किसदे हुंदे रंग महल ।

पुरूष दे हुंदे बाग-बगीचे
नारा दे हुंदे रंग-महल ।
कित्थी बसे मेरे तुलसी,
कित्थी रैहन्दे मेरे राम ।
कुत्थू ता रैहंदे हन सालिगराम ।
बागां बसे मेरे तुलसी, महला रैहंदे राम
मंदरा च रैहंदे सालिगराम ।
जपीए तपीए ता तपीए राम ।

वस्तुतः भगवत् प्राप्ति के लिए सच्ची निष्ठा और भावना की अपेक्षा है। भावना और विश्वास लोक-जीवन की अभिव्यक्ति और माया जाल से मुक्ति के दो प्रमुख तत्व हैं। इन्हीं दो के समन्वय से श्री राम की कृपा-प्राप्ति सम्भव है। विश्वास के लिए भावना और भावना के लिए विश्वास की प्रेरणा अनिवार्य है। इसीलिए लोक-धर्म का आधार एक ओर भावात्मक विश्वास है तथा दूसरी ओर विश्वासात्मक भावना। जो मनुष्य इन दो के संयोग से वंचित रहता है वह भवसागर से सफल पार नहीं लग सकताः-

बंदा भेजया था राम-राम जपणे,
माया ने जंजाल पाया ।
पापी बैठे पतण पर दोये,
धर्मियां ने पार लंघणा ।
कई तर गए कइयां ने तरी जाणा,
जिने राम नाम जपणा ।

अशिक्षित समाज में अन्धविश्वास, अच्छे-बुरे स्वप्नों, शकुन-अपशकुनों का प्रभाव बहुत अधिक रहता है। उनके गीतों और कथाओं में भी ऐसे आख्यानों का मार्मिक शब्दों में चित्रण मिलता है। महासुई राम कथा में चित्रकूट में एक रात सीता को स्वप्न होता है, जिसमें उसके पितर दिखाई देते हैं जो श्राद्ध मांगते हैं यह अपशकुन था और किसी अनिष्ट घटना का द्योतक था । तभी राम उठते हैं, उन्हें प्यास लगती है परन्तु उस रात लक्ष्मण पानी को नहीं जाता और कहता है मैंने बारह वर्ष पानी ढोया है आज तेरी पत्नी सीता ही पानी लायेगी-

सीता ले सुपने मिलै कीशड़ा सुपना मिले
सुपने पितरौ मिलै, पितरौ बोलौ लै काए?
पितरौ मांगै मसाण शरा धौ

बारह बीरशो धागो भाईया मैं बाबड़िए पाणी
एबे आणली आपू, तेरी ए सीतड़ा राणी ।

और जब सीता पानी के लिए जाने लगती है तो गहन विचार में पड़ जाती है कि मैं कौन सा घड़ा ले जांऊ । मिट्टी का घड़ा ले जांऊ तो लोग मुझे कुम्हारिन समझेंगे, लोहे का ले जांऊ तो लुहारिन समझेंगे। अतः वह सोने का घड़ा ले जाती है, ताकि लोग उसे महल की रानी समझे। कुल्लू का लोक- गीत द्रष्टव्य है -

जे हाऊं नेनू माटा रा घड़ोलू
लोका ता बुझले हांऊ सा कुम्हारी ।
जे हाऊं नेनू लोहा रा घड़ोलू
लोका बुझले हांऊ सा लुहारी ।
जे हांऊ नेनू पीतला रा घड़ोलू
लोका बुझणा जै हांऊ ठठारी ।
जे हांऊ नेनू चांदी रा घड़ोलू
लोका बुझणा जै हांऊ सनारी ।
जे हांऊ नेनू सूने री सनाणी लोका बुझले बेढ़े री राणी ।

हिमाचल के लोक गीतों में दर्शायी रामायण की यही विशिष्टता है कि इसमें पहाड़ी जन-मानस की परिस्थितियों और लोक विश्वासों का अनूठा चित्रण प्रस्तुत हुआ है। राम कथा के प्रसंगों में फेर-बदल के अतिरिक्त उनकी काव्य शैली और संगीतमय भावना ने लोक-रामायण को अत्यन्त मनोहर बनाया है। सीता हरण का वर्णन एक चम्ब-याली लोक-गीत में देखे बनता है :-

राम चले जांदे सकारे, सीता रैहंदी अकेली जी।
भगुए कपड़े रंगाएं रावणे, किते साधु रे बाणे जी ।
दाढ़ी ता मुन्नी मूछा रखी किते बुझरू रे बाणे जी ।
दे जिजमाणी भिछिया मिंजो, तेरे कुला रा पुरोहित जी ।
असा लोका हुंदे अंदरोल-भिछिया कुणी जी ।
न घरे छोरा न गोली, भिछिया कुणी देणी जी ।
जिन्हा लोका धरम कमाणे भिछिया अप्पु देणी जी ।
हेठ रखेया पैरा डिखरू, उप्पर रखेया पैर रावणे ।
अंगूठे री पकड़ी सीता, झोलिया झट पाई रावणे ।

वास्तव में रामायण हमारा एक महान् राष्ट्रीय ग्रन्थ है और श्रीराम महान राष्ट्र-पुरुष । अति प्राचीन काल से ही श्री राम के चरित्र को आधार मान कर विविध

प्रकार का साहित्य-सृजन होता रहा है और अभी यह क्रम अवाध गति से चलता जा रहा है। इसी धारा के अनुरूप लोक मांनस में प्रचलित कथा बहुरंगी विविधता लिए हुए चली है परन्तु लोक मानस में अध्यात्म रामायण के राम की अपेक्षा राम को आदर्श मानव के रूप में अधिक अपनाया गया है और यही हिमाचल की पहाड़ी रामायण की विशिष्टता है।

श्रीराम के प्राय: तीन प्रमुख रूप हैं :- वे साधारण नर हैं, वे मर्यादा पुरूषोत्तम राम हैं तथा अन्ततः वे परब्रह्मा हैं। पहाड़ी लोक-गीतों में इनके ये तीनों रूप मुखरित हुए हैं। साधारण व्यक्ति के रूप में उनका सर्वश्रेष्ठ चित्रण-चम्बा के एक लोक-गीत में हुआ है। जब श्री राम राजसी वस्त्राभूषण उतार कर योगियों का भेष धारण करके वन की तैयारी करते हैं तो लोक गायक का मन रो उठता है-

राज हुंदे होए बणवास
रामा वो मेरेया जोगणुआ ।
किजो किता जोगीयारा बाणा
श्रग राज हुदे होए बणवास
रामा वो मेरया जोगणुआ। ।
तेरे बिणा जुध्या नमाणी
रामा वो मेरेया ....
तेरे बिना असा किंहा जीणा
रामा ....।

इसी रूप में किन्नौर के लोक-गीतों के अनुसार श्री राम और हनुमान धर्मभाई थे। सीता को लंका का राजा रावण भगा कर ले गया था और लंगूरने हनुमान की पत्नी का अपहरण किया था :-

सीता लंके नी हारा
गुणीए बंदरी नी हारा
सीता हऊ कलासी देऊ
बंदरी तू कलासी दिए
हनूसी दौरीया बाणो ।

इसलिए हनुमान ने स्पष्ट शब्दों में श्री राम से इकरार किया कि "सीता को मैं लंका से छुड़ा ले आऊंगा" बंदरी को आप मुक्त करो"।

श्री राम का दूसरा रूप मर्यादा पुरूषोत्तम का है जो आतताई राक्षसों को मौत के घाट उतारता है। इस रूप में महासू क्षेत्र का एक लोक-गीत बड़ा प्रसिद्द है।

राम के जन्म पर देवता प्रसन्न थे। अब राक्षसों का सर्वनाश स्पष्ट था---

देवतै खुमली पाए,
राक्षसे दुनिया खाए
देवतै मुसुकुए हासो
कौरनी राखसो रोना सो
राजेआ बोलदा लागा
सनिओ जोध्ये री जागा ।

तीसरा रूप श्रीरामं का ब्रह्मा रूप है। इनका यह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान तथा सर्वव्यापक ईश्वर का रूप है। श्रीराम इस रूप में सर्वाधिक श्रद्धेय है। इसी रूप में योगी और साधक उनका ध्यान करते हैं:-

राम भज, राम भज रे मनां,
राभ का नाम ध्याओ रे ।
राम भज, राम भज रे मना,
राम का नाम दरयाओ रे ।।

यह वह रूप है जो भक्तों को भक्ति मार्ग में प्रतिष्ठित तथा प्रोत्साहित करता है। वे सगुण भी है और निर्गुण भी, साकार भी निराकार भी, सिरमौर क्षेत्र के एक लोक-गीत में इस रूप की इस प्रकार आराधना की गई है:-

आओ राम, आओ, राम तेरी शरण हऊ आया,
रामा रा नाऊं सुमरण कर मना, क्यों विरथा भरमाया ।
आपणी दया रे खोल खजाने, दर-दर क्यों भटकाया,
नाऊं तेरा जिन भी ऋषिए मुनीए गाया,
जीव छाडी तिनी ही काया मोक्ष पाया,
राम तेरी शरण हऊं आया ।

इसी परब्रह्मा रूप को श्रद्धालु लोग मन्त्रवत आदर देते हैं और उसके पाठ से लौकिक और पारलौकिक, शारीरिक तथा मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक कार्य-सिद्धि की कामना करते हैं एवं सर्वसाधारण नर नारायण रूप में भगवत-प्रेम की प्राप्ति करते हैं। श्रीराम के जन्म पर लोक गीतों में यही दृष्य प्रस्तुत होता है:-

संकर नारद बजायो
अवध पुरी आनन्द भयो ।
चारों वेद प्रजापति लाये सबनों राम चन्द्र गुण गाये ।
झुक-झुक सीस नवायो

हिमाचली संस्कृति में देवताओं के माली की प्रथा

- रामेश्वर दत्त शर्मा

भारत देश की उत्तर दिशा में एक छोटा क्षेत्र हिमाचल जहां एक ओर नैसर्गिक छटा बिखेरे हुए दर्शनीय सुन्दर पर्वतीय स्थल हैं वहां दूसरी ओर यह पवित्र देव भूमि माना जाता है। अनेक ऋषि मुनियों ने इसके आंचल में तप करके अपनी गाथाऐं अमर कीं । इस प्रदेश के ऊपरी क्षेत्र में अनेक सांस्कृतिक रसम व परम्पराऐं हैं। यहां अनेक देवी- देवताओं के मन्दिर हैं। जिला शिमला के हाटकोठी नामक स्थान पर दुर्गमाता की भव्य और उत्तरी भारत में अष्ट धातु की अपनी किस्म की मूर्ति है।

जुब्बल के आस पास अनेक छोटे-छोटे देवी देवताओं के मन्दिर हैं जिनमें नर सिंह, किरजा, कौलू, लाकड़ा, जगदम्बा, असुर, महासु व बोठा महासु आदि प्रमुख हैं। हर देवी अथावा देवता का हर क्षेत्र में एक माली होता है। लोगों का ऐसा विश्वास है कि देवता अपनी बात को माली {देवते द्वारा प्रतिनियुक्त व्यक्ति विशेष} के मुंह के माध्यम से बोलता है। रोचक बात यह है कि बीमारी की अवस्था में अधिकतर लोग बीमारी को देवताओं का प्रकोप मानते हैं। साधारण जनता तो क्या चिकित्सक लोग भी यहां इस बात में विश्वास रखते हैं। परिणामस्वरूप माली का महत्व बढ़ जाता है।

माली की नियुक्तिः- जहां देवता की पालकी मौजूद हो वहां लोग पालकी को निकाल कर उठाते हैं और जिस व्यक्ति के ऊपर पालकी अपना शीश झुकाएगी वह व्यक्ति माली होता है या कई जगह ये छोटे-2 देवी देवता एक बड़े देवता के अधीन होते हैं। बड़ा देवता अपने देव-दौरे के समय लोगों के अनुरोध पर माली नियुक्त करता है। बड़े देवता का माली प्रकट होकर जिस व्यक्ति पर चावल के दाने फैंकेगा वह व्यक्ति प्रकट हो जाएगा जिसे "ओतरना" कहते है इस प्रकार माली की नियुक्ति होती है।

माली की स्थिति व प्रकट होने का तरीकाः- दो-चार आदमी जो देवता से कुछ पूछना चाहते हैं माली के सामने बैठेंगे और प्रकट हो प्रकट हो पुकारते रहेंगे। माली थरथराने लगेगा और कुछ देर बाद झटके के साथ टोपी निकाल कर बोलना शुरू करेगा। इस प्रकार वह कार्य-कारण को हल करने की सलाह देगा साथ-2 हाथ पैर हिलाता रहेगा। कई जगह तो जगराता आदि के समय माली का रूप भयंकर होता है। वह बकरे को

काटने के बाद उसकी गर्दन को मुंह में डाल कर पूरे बकरे को उठाता है और उसका खून पीता है। कई बार आग के ढेर में माली छलांग मार देता है और राख तथा कोयले को चबाता है।

लोगो का विश्वास व अन्य कार्यः- माली पर लोगों का बहुत विश्वास होता है लोग उसके वचनों को देवता के प्रवचन मानते हैं और उसके अनुसार चलते हैं। ऐसा विश्वास है कि प्रकट होने की स्थिति में उसके अन्दर देव शक्ति होती है। माली देवता के साथ दौरे में भी जाता है।

कई जगह देवता की कुल आय में से कुछ भाग माली को दिया जाता है और कई जगह माली को गांव में कारज निपटाने के उपलक्ष्य में थोड़ा बहुत हक पैसे व अन्न के रूप में दिया जाता है। लोग देवता को राजा के स्तर से ऊपर मानते हैं।

माली एक गांव में एक देवता का एक ही होता है। जब लोगों का उस पर से विश्वास टूट जाता, अर्थात् उन्हें ऐसा मालूम होता है कि माली झूठ बोलता है तो सब लोग मिलकर देवता से माली बदलने की अर्ज करते हैं। देवता भी निर्वाचन विधि से माली को नियुक्त करता है। किसी माली का कोई परम्परागत पैतृक अधिकार नहीं माना जाता ।

पुरूष ही नहीं बल्कि कई जगह तो औरतें भी माली होती हैं। यहां अधिकतर औरतें काली(देवी) की माली होती हैं। कई काली के माली गा कर अपने प्रवचन बोलते हैं। हाटकोठी के आस-पास लोगों में ऐसा विश्वास है कि पौष मास के बाद मकर संक्रान्ति को देवता स्वर्ग लोक अथवा आकाश लोक को चले जाते हैं और महीने के बाद जब वापस आ जाते हैं तो माली विशेष के सामने लोग मन्दिर में इक्ठे हो जाएंगे और भू लोक तथा अपने क्षेत्र की भावी घटनाओं को बताने के लिए माली को प्रकट करते हैं। इस दिन तो लोगों के सामने माली का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। माली प्रकट होकर सब कुछ बताता है कि इस क्षेत्र में क्या-2 होगा कितनी वर्षा अथवा बर्फ गिरेगी। जनता साधारण उस वाणी पर विश्वास करती है और कथनानुसार चलती है। लोक भाषा में इसे "बखाण" कहते हैं। माली की भाषा मुहावरेदार और कहावतों से भरी होती है। यह देवभाषा कहलाती है।

माली देवता का प्रतिनिधि भी होता है और जनता का भी वह कड़ी का काम करता है। कई बार रहस्यमई स्थिति होती है माली जो बात या घटना की सूचना प्रकट होकर देता है वह सही रूप मे घटित हो जाती है। कई बार देवता की ओर से भ्रम होता है जिसे माली दूर करता है। अतः हम कह सकते हैं कि माली पहाड़ी संस्कृति के अनुसार देवता का एक अभिन्न अंग है। माली झाड़, झपट, भूत-प्रेत आदि का भ्रम पैदा करता है और उसे दूर भी करता है। भ्रम दूर करने के लिए वह पशुबली की भी

सलाह देता है। देव शक्ति ईश्वरीय शक्ति का रूप माना जाता है। देवता लोगों की अकांक्षा, मनौती, प्रार्थना व पूजा आदि के आधार पर दोष करता है और दोषों को दूर भी करता है।

कई मालियों का कहना है कि जब हमारे अन्दर देव शक्ति प्रकट होती है तो हमें साधारण मनुष्य की तरह यह पता नहीं होता कि हम क्या बोल रहे है। शक्ति के हट जाने के बाद भी ऐसा पता नहीं होता कि हमने क्या बोला और क्या किया, काली आदि के माली के सामने तो लोगों की दिन भर भारी भीड़ लगी होती है। यहां तक कि अधिक पढ़े-लिखे लोग भी उन पर विश्वास करते हैं। कई बार आधी रात्रि में भी लोग माली को ढूढ़ने उनके घर जाते हैं और समस्या का समाधान करवाते हैं।

देव शक्ति भी अनोखी है। इस देव लीला का अपना रूप है। देवता सम्बन्धी काम पहाड़ी क्षेत्र में लोक संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग है। तीज त्यौहार, मेले, जात्रे व पर्व में माली भाग लेते हैं और यज्ञ, भुण्डा, शान्त आदि को सम्पन्न करवाते हैं। यहां के हर मनुष्य का शीश छोटे अथावा बड़े देव मन्दिर के सामने झुक जाता है। कई माली तो आजन्म देवता के काम में रत्त रहते हैं। उनका पेशा ही बन जाता है। इस देवकला पर यहां के पहाड़ी लोगों को अभिमान है। माली के अतिरिक्त यहां मोहतमीन, कारदार आदि को नियुक्त करने की प्रथा है। लोगों का विश्वास इसी बात में है कि यह प्रथा निरन्तर स्थापित रहे ।

केता माया राम की आत्महत्या, एक ऐतिहासिक सन्दर्भ

के० अंगरूप 'लाहुली'

आदिवासी क्षेत्र लाहुल का अब तक कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं है। अतः उस क्षेत्र के अतीत की कतिपय घटनाओं को हम केवल वहां के लोक-गीतों, लोक-गाथाओं तथा जनश्रुतियों के माध्यम से ही कुछ जान सकते हैं। क्योंकि लोक-गाथा आदि मौखिक साहित्य में स्थानीय इतिहास की सामग्री भरपूर रहती है। इस प्रकार इसके अनुशीलन से विलुप्त एवं विस्मृत इतिहास पर किंचित प्रकाश पड़ सकता है। निम्न लोक-गाथा लाहुल क्षेत्र में पटनवादी के झुण्डा नामक गांव के रहने वाले केता माया राम का जीवन-वृत है। माया राम झुण्डा गांव के एक सम्मानित व्यक्ति थे। यद्यपि उनका घर और परिवार बड़ा नहीं था, परन्तु वे स्वयं में विशाल हृदय एवं एक सद्-चरित्र पुरुष थे। अतः गांव के लोग उनका बड़ा सम्मान करते थे। गांव की सारी व्यवस्था उनकी नीति और संकेतो पर चलती थी। इस लिए प्रशासन की ओर से नियुक्त राज-पुरूषों को माया राम का व्यक्तित्व और उनकी साख खलती थी। अतः उन विदेषी एवं छिद्रान्वेषी अधिकारियों ने धीरे-धीरे माया राम के विरुद्द कुल्लू राज दरबार और स्वयं राजा प्रीतम सिंह के कान भर दिए थे। फलस्वरूप राजा प्रीतम सिंह माया राम से रूष्ट हो गए और उनपर राजद्रोह का आरोप लगा कर उन्हें गर्मी के दिनों (जब कुल्लू की भूमि आग की भांति तपने लगती है, उस समय) कुल्लू राज-दरबार में उपस्थित होने के लिए परवाना जारी कर दिया। परवाना मानी आज्ञा पत्र में कौन-कौन सी बातें लिखी थी, यह तो प्रस्तुत लोक-गाथा से बहुत स्पष्ट नहीं होता, परन्तु उस राज-आज्ञा को प्राप्त करने के पश्चात् माया राम ने जो दौड़-धूप की, उससे प्रतीत होता है कि राज-आज्ञा में निःसन्देह उनके विरूद भंयकर आरोप था। इसी लिए तो स्वाभिमानी माया राम ने कुल्लू राज-दरबार में उपस्थित होने की अपेक्षा अपने आप को समाप्त कर देना अधिक श्रेष्ठकर समझा। ये सभी बातें तो प्रस्तुत लोक-गाथा से स्पष्ट होती हैं। इन के अतिरिक्त लाहुल पर चीनी तुर्किस्तान के खानादरोगों द्वारा आक्रमण करना सिंग-पा यानी सिखों द्वारा 6 वर्ष (1840-1846) तक अत्याचार करना तथा कूल्लू के

सामन्ती परिवारों द्वारा लाहुल की निरीह जनता पर जुल्म ढाहना आदि बातें वहां की दन्त-कथाओं से उद्घाटित होती हैं ।

इस प्रकार विभिन्न स्रोतों के अनुशीलन से ऐसा प्रतीत होता है कि लाहुल पर कुल्लू राज परिवारों ने 11वीं से लेकर 19वीं शती के प्रथम चरण तक कभी स्थायी और कभी अस्थायी रूप से अधिकार किए थे, तो उस समय कैता माया राम ने आत्महत्या की थी। उस बारे पुरूष कैता माया राम की अमर कहानी यानी लोक-गाथा और गाथा का आशय निम्न प्रकार है-

1· राजा प्रीतमाए कागुता आई ओ।

एक समय की बात है कि कुल्लू राजवंश के राजा प्रीतम सिंह का हुक्कम-नामा लाहुल आया अर्थात् पहुंचा ।

2· ऐसो कागुताए मैया रामा ताही ओ ।

वह हुक्कम-नामा पटनवादी के झुण्डा निवासी, कैता परिवार के श्री माया राम के लिए{नाम} था ।

3· एकी न ध्याड़ीए ढोबे दाड़े पहुंची ओ ।

उस समय लाहुल और कुल्लू के मध्य यातायात का कोई साधन नहीं था । अतः लोग पैदल ही आते-जाते थे । इस प्रकार मत्र वाहक कुल्लू राज-दरबार से पत्र लेकर प्रथम दिन ढोबी दार पहुंचा ।

4· दूजी न ध्याड़ीए मुनाड़ी कोठी ओ ।

5· त्रिजी न ध्याड़ीए जोत लंघाय ओ ।

6· चोथे न ध्याड़ीए खोगसरा पहुंची ओ ।

7· पन्जु न ध्याड़ीए सीसुए पहुंची ओ ।

8· छेओ न ध्याड़ीए गुन्धुलेरा कोठी ओ ।

9· सातू न ध्याड़ीए तान्दीरा कोठी ओ ।

वह वहां से चल कर दूसरे दिन सदर-मकाम मनाली पहुंचा । तीसरे दिन उसने जोत यानी रट्रांग दर्रे को पार किया । चौथे दिन वह खोग-सर गांव पहुंचा । पांचवें दिन सीसू पहुंचा, छठवें दिन वह गोधना पड़ाव पर पहुंचा तथा सातवें दिन वह तन्दी मुख्यालय पहुंच गया।

10· तान्दी-रा कोठीए त्रिजी कामुदारा ओ ।

उन दिनों कुल्लू प्रशासन की ओर से राजस्व प्राप्त करने तथा कानून व व्यवस्था बनाए रखने के लिए तत्कालीन तन्दी मुख्यालय में तीन राज्य कर्मचारी नियुक्त होते थे। जिन में एक हाकिम {वजीर}, एक अधिकारी तथा एक कानूनगो होता था।

11· जोडी-ता हजूरीए कीजी कामे आई ओ ।

पत्र वाहक उन अधिकारियों के सम्मुख पहुंच कर तथा हाथ जोड़कर"जी,हजूर"आदि दरबारी रसम अदा करने लगा तो राज-शक्ति के मदांध उन अधिकारियों की त्योरी चढ़ गई और वे उस से पूछने लगे कि तुम यहां किस काम के लिए आए हो ।

12. कैता मैया रामेरीए कागुता आई ओ।

इस पर पत्र वाहक राज-पत्र को उन अधिकारियों को दिखाते हुए कहने लगा कि झुण्डा निवासी कैता माया राम के नाम यह कागज़{=हुक्म नामा} आया है। मैं इसे लेकर कुल्लू राज-दरबार से आ रहा हूं ।

13. आठूना ध्याड़ीए फूड़ेरा प्रौड़ी ओ ।

पत्र वाहक वहां से आगे बढ़ा और इस प्रकार वह आठवें दिन फुड़ा नामक गांव में पहुंच गया ।

14. हकुमा पम्बूड़ाए पूछूणी लागी ओ ।

फुड़ा गांव में भी राज्य की ओर से एक हाकिम नियुक्त था । हाकिम जिस का नाम पम्बूड़ा {पल-बर} था, आदतन अपनी मूछों पर ताव देते हुए बड़े रोब-दाब के साथ पत्र वाहक से पूछने लगा कि तुम यहां किया काम के लिए आए हो ।

15. हकुमा पम्बूड़ा कागुता वाची ओ।
ऐसो कागुताए मेरे-रा नाहीं ओ ।।

इस पर पत्र-वाहक अपनी हैसियत जताने के लिए राज-पत्र को हाकिम के सामने रखते हुए कहने लगा कि मैं कुल्लू राज दरबार का एक कर्मचारी हूँ और राज्य के काम से ही यहां आया हूं । इतने में वह अनाड़ी हाकिम उस मोहर-बन्द राज-पत्र को बेधड़क खोल कर पढ़ने लगा और कहने लगा कि यह पत्र तो मेरे लिए नहीं है।

16. कला दौतीए तलजोणी ग्रांए ओ।
कैता मैया रामए मंजी ऊपरी सोई ओ ।।

दूसरे दिन सुबह वह पत्र-वाहक क्रमशः तालजोन नामक गांव पहुंचा । उसके पर्शिव भाग में माया राम का गांव था। वह वहां से आगे बढ़ा और झुण्ड़ा गांव पहुंच गया । उस समय कैता परिवार के गृह स्वामी श्री माया राम चारपाई पर लेटे आराम कर रहे थे। पत्र-वाहक ने राज पत्र को जब माया राम की ओर बढ़ाया तो-

17. कैता मैया रामाए कागुता बांची ओ ।

कैता माया राम ने राज-पत्र को बड़े आदर भाव के साथ अपने दोनों हाथों से धारण किया और उसे सिर-माथे लगा कर गम्भीरता पूर्वक पढ़ने लगे ।

18. घोड़ी-ता चाढ़ेए फूड़ा जोगू आई ओ ।

पत्र को पढ़ने के पश्चात वे अन्यमनस्क से हो गए और तुरन्त घोड़े पर चढ़कर हाकिम

पम्बूड़ा से सलाह-मशवरा करने फुड़ा गाव की ओर चले आए ।

19· हकुमा पम्बूड़ा पूछूणी लागी ओ ।
तौसेरी ध्याड़ीए दो गल्ला होई ओ ।

माया राम फुड़ा पहुंच कर अभी घोड़े से नीचे उतर भी नहीं पाए थे कि आदत का मारा हाकिम पम्बूड़ा आफिसरी लहजे में उनसे पूछने लगा- हे माया राम, तुम ने कौन सी बेवकूफी की बात की है । जिस की बजह से राजा तुम से इतने नाराज हैं। इस सिलसिले में अब गर्मी के दिनों तुम्हारे विरुद कुल्लू राज-दरबार में दो बातें होंगी यानि तुम पर मुकदमा चलेगा । इस के लिए तुम्हें अभी से तैयार रहना होगा । माया राम हाकिम पम्बूड़ा के साथ सलाह-मशविरा करने तथा सहायता मांगने की बात सोच कर चले थे, परन्तु हाकिम के असहयोग पूर्ण व्यवहार से, उनकी सारी योजनाएं धूमिल पड़ गई। अतः वे उसी स्थान स पुनः-

20· घोड़ी-ता चाढेए गोरूमा ग्रांए आई ओ।
कान्हा हकुमाए कागुता बांची ओ ।।

घोड़े पर चढ़े और सीधा गोरमा गांव की ओर चले आए। उस समय गोरमा में कान्हा §कर्ण§ नामक एक हाकिम रहता था । चिन्तातुर माया राम ने राज-आज्ञा को उनको दिखाते हुए मार्ग-दर्शन और सहयोग के लिए प्रार्थना की। हाकिम कान्हा ने पत्र को पढ़ कर कहा-

21· तौंसेरी ध्याड़ीए पिता-पाणिरे डारे ओ।
तौंसेरी ध्याड़ीए दो गल्ला होणी ओ ।।

इस हुक्म नामा के मुताबिक तुम पर राज-द्रोही का इलज़ाम है और गर्मी के दिनों जब कुल्लू में पित्त§=पीलिया§ और पानी§=बरसात§ का बड़ा खतरा रहता है। उन दिनों तुम पर कुल्लू राज-दरबार में मुकदमा चलेगा । हाकिम कान्हा ने अपनी ओर से कहा-हुक्म नामा जारी हो चुका है, इसलिए अब मैं तुम्हारी कुछ भी मदद नहीं कर सकता ।

22· कैता माया रामए घरे जोगू आई ओ।

हाकिम कान्हा का निराशाजनक उत्तर सुन कर माया राम व्यथित हो गए, और भीतर ही भीतर उनकी आत्मा रोने लगी। उन्हें अब दिशाएं सुन्न प्रतीत होने लगीं । इस प्रकार कैता माया राम वहां से पुनः अपने घर की ओर चले आए ।

23· कला दौती ध्याड़ी शंशा-रे जातरे ओ ।
लोको दुनियाएं जातुरू जो आई ओ ।।

दूसरे दिन सुबह से शांशा नामक गांव में एक उत्सव लगना था, अतः सारी दुनिया के लोग §=बहुत से लोग§ उस उत्सव में भाग लेने के लिए आ रहे थे ।

24· कैता माया रामए जातरू आई ओ।
ध्याड़ी आधू ध्याड़ी घरे गोगू आई ओ ।

दुःखी-मना कैता माया राम भी अपना दिल बहलाने के लिए उत्सव में तो आए, परन्तु छुरी तले जीवन जीने वाला कब तक अपने आप को सुखी अनुभव कर सकता है। इस प्रकार उनका मन उत्सव से उचट गया और वे वहां से आधे ही दिन में अपने घर की ओर चले आए ।

25· कैता माया रामाए गना घोटा दीती ओ।
कैता माया रामाए स्वर्गा प्राबत गूई ओ ।।

कैता माया राम को अब अपना जीवन भी भार स्वरूप प्रतीत होने लगा । वे सोचने लगे कि अपमानित जीवन जीने की अपेक्षा मरना अच्छा है। मृत्यु से आलिंगन करने में अब उन्हें उतावली हो रही थी। इस प्रकार कैता परिवार के गृह स्वामी श्री माया राम ने अपना गला घोंट दिया और वे तुरन्त निष्प्राण हो गए । राज-आज्ञा अब उनका बाल भी बांका नहीं कर सकती थी । माया राम, आदर्श के लिए शहीद हो कर स्वर्ग को प्राप्त हुए । उनका आत्म-बलिदान व्यर्थ नहीं गया । तत्कालीन गवैयों ने उनके आदर्शमय जीवन को काव्य में संजो कर उनको अमर कर दिया । आज भी गांव के रसिक गवैए, कैता माया राम की अमर-गाथा को जब लय में गाने लगते हैं, तो श्रोताओं की आंखों से श्रद्धाश्रु-निर्झर बहने लगते हैं ।

(पृष्ठ ४ का शेष)

18· के·अंगरूप महासिद्धाचार्य गुरु घण्टापाद की तपोभूमि लाहुल, विधाभारती, नवम्बर, 86 किन्नौर, पृष्ठ 30.

19· के· अंगरूप 'लाहुली-जनजाति को बौद्ध धर्म की देन', पृष्ठ 30.

20. W.Y.Evan -wentz (ed) Op., cit, pp 142-47.

21. District Gazetteers of the Undivided Punjab, Vol.III, Delhi, 1985 (Reprint) P.257.

22. Helmut Hoffman, The religions of Tibet, London, 1956 P. 54

23. Snelgrove, Buddhist Himalaya, Page. 151.

24. Tenzin Gyatso(xivth Dalai Lama), The opening of the Wisdom Eye, Bangkok, 1968, Page 5.

25. Tucci, The Religions of Tibet, London, 1980, P. 12

26. राहुल सांकृत्यायन, तिब्बत में बौद्ध धर्म, इलाहाबाद, 1979, पृष्ठ 16-17

27· डॉ० प्रभाकर माचवे, One called the second Buddha, Indian Express, October, 11,1988, Page.III.

हरितालिका

– राजरानी शर्मा

कांगड़ा प्रदेश में हरितालिका व्रत पूरे विधि-विधान से मनाया जाता है। इस व्रत को सौभाग्यवती स्त्रियां करती हैं। गांव के लोग इसे "हरियाली तीज" के नाम से भी पुकारते हैं। भाद्रपद मास की हस्त नक्षत्र से युक्त शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि को इस व्रत का अनुष्ठान किया जाता है।

इन दिनों वर्षा ऋतु पूरे यौवन पर होती हैं। इस कारण चारों ओर हरियाली ही हरियाली दृष्टिगोचर होती है। खेतों में मक्की व धान पकने को होते हैं। पेड़ पौधे, वृक्ष, लताएं, फल-फूलों से लदी शोभायमान होती हैं। आमों की डालियों में कोयल की मधुर गूंज से हृदय में हिलोरें उठने लगते हैं। आमों की मज़बूत डालियों में झूला डाल कर कुआंरी व नवविवाहित ललनाएं झूले व मल्हार के गीत गाकर झूला झूलती हैं। बड़ा ही आनन्दमय वातावरण होता है । भाद्रपद मास को "काला महीना" भी कहते हैं। इस महीने में शादी ब्याह या कोई अन्य शुभ कार्य सम्पन्न नहीं करते। शादी के पश्चात् यह महीना लड़कियों द्वारा मायके में ही व्यतीत करने की परम्परा हैं। नई उम्र के साथ नई उमंगे, नये अरमान, नये सपने जवान होते हैं। गोरे-गोरे हाथों में मैंहदी स्वार-शृंगार करके मस्ती भरे मधुर गीत अपने सुरीले कण्ठों द्वारा गाती हैं तो वातावरण अत्यन्त मनमोहक हो उठता है। यों प्रतीत होता है मानो स्वर्ग ही भूमि पर उत्तर आया है। ऐसे में यह नव-यौवनाएं व बड़ी, बूढ़ी सभी स्त्रियां अपने सुहाग की रक्षा के लिये मंगल कामनाएं करती हैं। शिव-पार्वती का पूजन करके हरितालिका व्रत कथा सुन कर सुहाग की रक्षा हेतु भगवान से प्रार्थना करती हैं। अपने रिश्ते, नातों, सखियों, सभी सुहागिनों को सौभाग्य सामग्री जैसे:-मैंहदी, चूड़ियां, बिन्दी, सिन्दूर रोली, मौली व मिठाई आदि देती हैं। बड़ी बूढ़ी सभी औरतों को प्रणाम कर आशीर्वाद ग्रहण करती हैं। कहीं-कहीं, कुंआरी, नवयौवनाएं भी बड़े चाव से इस व्रत को करती हैं। इस व्रत का विधान इस प्रकार है:-

सर्व प्रथम शुक्ल पक्ष की प्रथम तिथि को नदी के जल से स्नान करके, शुद्ध वस्त्र धारण कर अपने घर-आंगन को गाय के गोबर से लीप कर पवित्र बनाती हैं। उसमें चावलों के आटे से "ऐप्पण" यानी चौक डालती हैं। फिर उन चौकों में सुभस्य सूचना प्रतीक "पत्तरी हड़ाती" हैं। किसी पवित्र स्थान से मिट्टी लाकर एक बड़े बर्तन

में भिगो देती हैं। जिस घर में अनुष्ठान करना हो वहां सभी स्त्रियां इक्ट्ठी होकर एक चौकी पर उस मिट्टी द्वारा "हरियाली" यानि पार्वती की मूर्ति गढ़ती हैं। उसी के साथ ही शिवलिंग व गणपति की मूर्तियां भी बनाई जाती हैं। शिवजी की बारात के लिये ब्रह्मा विष्णु, सभी देवता, शिवगण, ढ़ोल, व शहनाई बजाने वाले, नाई, पुरोहित, मोर, ब्रह्मा विष्णु भगवान के वाहन हंस व गरूड़ भी उसी पवित्र मिट्टी दारा निर्मित किये जाते हैं। हाथों दारा इतनी सुन्दर मूर्तियां बनती हैं, सुरीले, मधुर कण्ठों दारा शिव, पार्वती की स्तुति के गीत गाए जाते हैं।

शिव शंकर डमरूओं वाले, मेरा सहारा तूई है।
लोकां दे लखां सहारे, मेरा सहारा तूही है ।।
पार्वती ने बाही दिती, हरी-हरी मैंहदी ।
शिवां ने बाही दिती भंग, बे मेरा सहारा तूही है ।।
पार्वती दी उगी पेई हरी-हरी मैंहदी ।
शिवां दी उगी पेई भंग, वे मेरा सहारा तूही है ।।
पार्वती ने कटी लेई हरी-हरी मैंहदी ।
शिवां ने कटी लेई भंग, वे मेरा सहारा तूही है।।
पार्वती ने घोटी लेई हरी हरी मैंहदी।
सिबां ने घोटी लेई भंग, बे मेरा सहारा तूही है ।।
पार्बती दे हथां चढ़ी गई लाल-लाल मैंहदी ।
सिबां जो चढ़ी गई भंग बे मेरा सहारा तूही है ।।
शिव शंकर डमरूओं वाले, मेरा सहारा तूही है।।

इसके पश्चात् दूज वाले दिन सांयकाल दूज के चन्द्रमा के दर्शन करते हैं। परन्तु आसमान में बादल छाये होने के कारण कभी-कभी दर्शन नहीं होते हैं। जिन्हें दूज के चांद के दर्शन हो जाते हैं, वे लोग समझते हैं कि यह वर्ष उनके लिये शुभ है यानि स्वयं शिव जी ने हमें दर्शन देकर कृतार्थ किया है। लोक विश्वास के अनुसार एक कारण यह भी है कि चौथ का चन्द्रमा यदि जाने-अनजाने में दिख जाये तो लोग समझते हैं कि चोरी काइल्जाम लगता है। एक बार श्री कृष्ण भगवान ने भी गल्ती से चौथ का चांद देखा था तभी उनको स्यमन्तक मणि की चोरी का इल्जाम लगा था और उन्होंने भी पूरे वर्ष भर प्रतीक्षा करके इसी दूज के चांद को देखकर चोरी के कलंक से मुक्ति पाई थी ।

इसके उपरान्त तृतीया के दिन ब्रह्म-मुहूर्त में उठकर नदी, तालाब आदि के जल में स्नान करके एक कलश शुद्ध, ताजा जल से भर कर लाती है। फिर केले व आम, पत्लवों से सुशोभित मण्ड़प बनाकर उसमें रंग बिरंगे बस्त्रों का चन्दोवा बना कर, चन्दन आदि सुगंधित द्रव्यों से मण्डप को लीप कर शखं ढोलक , छैने आदि बजा कर

तरह-तरह के मंगलाचार पूर्वक शिव व पार्वती की प्रतिमा वाली चौकी को उस मण्डप में स्थापित किया जाता है। पुरोहित लोग मन्त्रोच्चारण द्वारा उन्हें वस्त्राभूषणों से सुसज्जित कर उनमें प्राण प्रतिष्ठा करते हैं। उस रोज दिन भर उपवास करके सुगन्धित धूपबती व फल, फूल एकत्रित कर शिव-पार्वती का पूजन करते हैं। पूजा की विभिन्न वस्तुएं लाल वस्त्र द्वारा आच्छादित नारियल, सुपारी, लौंग, जमीरी, अनार, नारंगी व अन्य ऋतुफल व फूल भगवान को मन्त्रों द्वारा ही अर्पित करते हैं व पूजन द्वारा मां पार्वती को प्रसन्न होने की प्रार्थना करते हैं :-

आगच्छ देवि सर्वेशी, सर्वदेवैश्च संस्तुते ।
अतस्त्वाम् पूजयिष्यामि प्रसन्नाभव पार्वति ।
शिवे शिवप्रिये देवि मंगले च जगन्मदे ।
शिवे कल्याणदे देविशिवरूपे नमोऽस्तुते ।।
शिवरूपे नमस्तेऽस्तु शिवायै सततं नमः ।
शिव प्रीतियुते नित्यं पाद्यं मे प्रतिगृह्यताम् ।
संसार ताप विच्छेदं कुरु मे सिंहवाहिनी
सर्वकामप्रदे देवि अर्घ्यमे प्रतिगृह्यताम् ।।
राज्यं सौभाग्यं मे देवि प्रसन्नाभव पार्वति ।
मन्त्रणामेन देवि त्वं पूजितासि महेश्वरि ।
लोकानां तुष्टिकर्त्री च मुक्तिदा च सदा नृणाम् ।
वान्छितं देहि मे नित्यं दुरितं च विनाशय ।।

हे माता पार्वती! सब देवों की ईश्वरी! आप प्रसन्न हो जाइए और मेरे पूजन में पधारिए । जगत् का मंगल करने वाली शिवरूपिणी माँ मैं आपको नमस्कार करती हूं। हे सिंह वाहिनी, मां! आपको शत-शत नमन है। हे शिवप्रिया मां। मैं प्रीतिपूर्वक जो पावनअर्घ्य दे रही हूं । हे संसार के दुखों को दूर करने वाली मां पार्वति! आप प्रसन्न होकर इसे ग्रहण कीजिए । हे महेश्वरी, सर्वकामप्रदा मां! अपने भक्तों को राज्य, सौभाग्य तुष्टि- पुष्टि और मुक्ति देने वाली मां पार्वती! आप प्रसन्न होकर सभी लोकों में सभी प्राणियों को दुष्कर्मों से दूर करके उन्हें वांछित वस्तुएं प्रदान करें। इन पवित्र मन्त्रों द्वारा पूजन कर के इस प्रकार प्रार्थना करती हैं।

हरिए नी हरियालिए तीजे,
नित नित औया तू सदा भलिए ।
बौवा बोले तिज्जो राजबर टोला, नरैण बर टोला
तू कःहजो सस्सी मेरिए पारबलिए
राजबर मंगा न न्नरैण बर, (बांहडी

मेरे मने सिब सकर बसदे
सुण शौरा सिब जी कोई तापस जोगी
मसाणा च रैहदे सैह धूणी लाई के
न सह जोगी न तपस्सी मेरे बौणा जी
सारी तरलोकी च जिहजो पूजदे
तने मृग-छाल जिहदे हथे करमडल
डगू कने नाग जिहदे गले लटके
न्यारा न्यारा भेस मेरे सिब जी दा बौवा
ब्रह्म, बिसनू सब देव पूजदेक
माई बोले सिब जी ता तपसिया जोगी
सह न घरिस्ती बसाई सकदेक
जित जोगिए दी मैं जोगण माता, मै जौगण बौवा
मेरे मने सिब सकर बसदे
हर जन्मे मै ता सिब बर मगदी ।
नदिए पर औण सदासिब चढके
जटा बिच सिवा दी गगा जे बसदी
पूजा दा चन्न जिसदे सीस चमके
हरिए नी हरियालिए तीजे
नित नित औयां तू सदा भलिए ।

नायिका कहती है-- ऐ हरियाली तीज ! मैं नित्य ही तुम्हारे इसी प्रकार सौभाग्य पूर्वा-आगमन की प्रतीक्षा करती हूँ। यहां हरियाली सम्बोधन पार्वती के लिए है। उनके पिता श्री हिमवान् कहते हैं कि पार्वती मैं तुम्हारे लिए कोई राजा महाराजा ढूंढूंगा या भगवान नारायण से तुम्हारा विवाह करूंगा। तुम किस लिए रूठ कर बैठी हो ? पार्वती जी कहती हैं कि पिता जी हिन्दु स्त्री तो एक पुरूष को अपना स्वामी मान लेती है तो अन्य पुरूष के लिए तो सोचना भी पाप समझती है। मैंने भी शिवजी को पतिरूप में मन ही मन ग्रहण कर लिया है। माता-पिता भी अपनी फूल सी कोमल व सुन्दर बेटी के लिए कोई सुन्दर सजीला दूल्हा ही चाह्ते हैं सो बेटी को समझाते हैं कि शिव तो योगी, तपस्वी व श्मशान में रहने वाले हैं। वे भला घर-गृहस्थी कैसे बसा सकते हैं। वे अमंगल वेष-धारी हैं और किसी भी तरह तुम्हारे योग्य नहीं हैं। परन्तु गिरिजा तो उन्हीं तपस्वी, जोगी की जोगन बन चुकी है उनके अंगों की विभूति तन को मृगछाला और हाथों का कमंडल

ही उमा की सुख-सौभाग्य व सम्पदा है। मां उनके विषय में जो कुछ भी उमा को बताना चाहती है पार्वती जो तो स्वयं ही शिवस्वरूपिणी है वे भला अपने पति की बुराई कैसे सहन कर सकती हैं। शिव जी के कानों के बिच्छू, गले में लटके नाग, मस्तक पर शोभायमान दूज का चांद व शीश पर धारण की हुई भागीरथी गंगा को देख कर पार्वती जी उनके सुन्दर स्वरूप में ही मग्न हो जाती हैं। माता-पिता जब हर तरह के प्रलोभन देकर थक जाते है तो अन्त में हार कर बेटी की ज़िद के आगे हार मान लेते हैं व शिवजी से ही उमा का पाणि-ग्रहण करवा देते हैं। बेटी के पैदा होते ही तो मां-बाप के मन में चिंता हो जाती है। बेटी के योग्य दूल्हा ढूंढने में कितनी परेशानी होती है उसका इस गीत से पता चलता है :-

जिस दिन बाली कन्या जरम लेया ऐ
बाबे मने चिन्ता उगमी राम
हथे पर गडुआ धारे धार कम्बेआ
चल ब्रिन्दरावणे जाणा राम
इक बण टोजलेया मै दूऐ बैण टोलेया
तरीए बणे टोलण जाणा राम
बारा तो कोह दी उजाड है जोगी
जित्थू जाई धूणी रमाई राम
भरिए कटोरी फूल्ल कुगुऐ दी सहियो
मै जोगिए दे सिरे पर डारी राम
राजेया दी कन्या ता राजेया जो दीरनी
हम जोगी सन्यासी राम
महल ता माडिया जो बसणे जो चाहिए
मसरू दरयाइया सब पहनणे जो चाहिए
सुन्ना कने चादी गले पाणे जो चाहिए
हम जोगी सन्यासी राम
आजा रे ब्रह्मणा लै मगा केरा घोटणा
मै ऐहो जेही दच्छणा देणी राम
बाल मेरा मतवाला हेई जागा
मै ऐहो जेही दच्छणा देणी राम नी लैणी राम
लै जा रे ब्रह्मणा एह धूडी केश चुटका
मै ऐही जेही दच्छणा देणी राम

अन्दर ता बहार धूडेया घूड होई जाग
मै ऐही जेही दच्छणा नी लैणी राम
अग्गे अग्गे चलदा पिछे मुडी दिखदा
जाड स्यूने दे बाड स्यूने दे
सदा सब अन्तरजामी राम
जुड मिड सखिया देखण आईया
गौरजा क्या वर पाया राम
गौरजा राणी सह त्रैह त्रैही रोई
अम्मा बावे दे पास खडोई
अपणे बीरने दे गले लमकोई
मै जागड़िया बर पाया राम
जा मेरे सदस सिब लग्ना जो आए
सिरे जटा जूट कन्ने गगा बरसाए
गले मडभाल कन्ने सप्प लटकाए
गौरजा थर-थर कम्बदी राम
उठो मेरे सदा सिब गोरजा डरदी
आपणा रूप सुधारो राम
जा मेरे सदासिब लग्ना जो आए
सृष्टि ते रूप सुआए राम
मेरे जन्मे ता सब कोई जन्मे
सदासिब अन्तरयामी राम

सुन्दरी गिरिजा के लिये पिता बर ढूंढ रहे हैं। कहीं लड़का अच्छा है तो धैर अच्छा नहीं। घर खानदान उचित है तो बर काला है। अर्थात् कहीं न कहीं कोई कमी दिखाई दे ही जाती है। अन्त में उमा ही इस समस्या का हल कर देती हैं कि मैं तो शिव के साथ ही विवाह करूंगी। उसके संकल्प के आगे माता-पिता को झुकना ही पड़ता है। शिव का विवाह होने वाला है। उमा की सखियां उमा के पति के देखने के लिय उत्सुक हैं। चाहे मन ही मन शिव का वरण कर लिया है। परन्तु सुन्दर दूल्हे की कल्पना लिये जब भयंकर रूप-धारी, जोगी, सन्यासी को देखती हैं तो डर कर रोने लगती हैं और शिव जी से प्रार्थना करती हैं कि हे प्रभु! अपने इस डरावने स्वरूप का सुधार कीजिए । आप तो अन्तर्यामी हैं। मेरे मन की बात जानते हैं। तो सब सखियों के सामने इस प्रकार का अमंगल वेष धारण कर मुझे लज्जित क्यों करते हो । अन्तर्यामी शिव, गिरिजा के मन की बात जान कर जब लग्न के लिये आते हैं तो उस समय पूरी

सृष्टि में उनसे अधिक सुन्दर कोई पुरूष ही न होगा। उस समय गिरिजा प्रसन्न होकर कहती है कि जैसे जन्म लेकर मैंने अपने मन के अनुकूल मंगलकारी वर पाया है भगवान् हर कन्या को ऐसा ही मन-वाञ्छित पति प्रदान करें। इस प्रकार शिव-पार्वती जगत् के कल्याण के लिये विवाह-सूत्र में बन्ध जाते हैं।

इस सन्दर्भ में एक अन्य गीत है जिसमें शिव जी की पार्वती जी से छेड़छाड़ व पार्वती का नाराज़ होकर मायके जाना व अन्त में अग्निकुंड में कूद कर प्रण त्यागने की कथा आती है।

हरिए नी हरियालिये दूबे, सदा रेया हरियाली ऐ
शिवजी पुछदे गौरा राणी जो
बिन्दलू कुतू गुआया ऐ
टूटेया खटोल शिव जी बाण पुराणा
बिन्दूल ओथू गुआया अनी राये बेलडिए
मापे ता तेरे पार्वती साह जे कहिए
बिन्दलू ता लैणा बणवाई अनी राए बेलडिए
डाइया न लायो अशव जी मीहणे न लायो
डाइया सहीया नही जाहन अनी राए बेलडिए
रोए दी मारी पारवती पेइया दे आई
दर बिच रही हखडोई अनी राएबेलडिए
सददी न क्थी धीए बुलाई न थी
अप्पू उठी कोया आई अनी राएबेलडिए
चौई चकुठिया माए बर न थो मिलेया
मै जोगिए दे ेडे लाई अनी राएबेलडिए
जोगी न थो धीए बरागी नथो
एह सारी दूनिया दा साई अनी राएबेलडिये
दुनिया दे साई जो न्यून्दर कैह नी दिती
बेटडी कहीो भुलाई अनी राएबेलढि
रोए दी मारी पार्वती कुण्डे च पेई है।
जान दिती है गुआई अनी राएबेलडिए हथा मली मली मापे पछतादे
एह घाडी हटी कैह नी आई अनी राबेलडिए

इसी तरह के अन्य भजन व गीत गाते हुए पूजन करते पूजन के उपरान्त परोहित से हरितालिका व्रत की कथा सुनते हैं। कथा प्रकार हैः-

एक समय शिव पार्वती सुमेरू पर्वत पर बैठे बातें कर रहे थे। पार्वती ने शिव जी को प्रसन्न. जान पूछा - हे प्रभु ! कोई ऐसा व्रत जप,,तप या दान बताइये जो समस्त अभीष्टों को प्रदान करने वाला व सौभाग्य व सन्तान को देने वाला हो। किस तप अथवा दान से आप जैसे आदि मध्य व अन्तरहित आप महाप्रभु को मैं अर्धांगिनी बनी। शिव जी बोले देवि सुनो! तुम्हारे मन, वचन व कर्म में मेरे लिये अमोघ प्रेम व निष्ठा भरी है इस कारण तुम्हें बताता हूं । यह व्रत अत्यन्त प्राचीन है। तुम मन लगा कर सुनो । जिस व्रत के प्रभाव से तुमने मेरा आधा आसन प्राप्त किया है वह मैं तुम्हें बताऊंगा क्योंकि तुम मेरी प्रेयसी हो। भाद्रपद मास मैं हस्त नक्षत्र से युक्त तृतीया तिथि को उसका अनुष्ठान मात्र करने से स्त्रियां सब पापों से मुक्त हो जाती हैं। हे देवी! तुमने आज से बहुत दिनों पहले इस व्रत को किया था। पार्वती ने पूछा- हे नाथ! मैंने यह व्रत किस लिए किया था यह मैं आपके मुख से सुनना चाहती हूं। शिवजी बोले- भारत की उत्तर की ओर एक रमणीय पर्वत श्रेष्ठ हिमवान है उसके आस-पास नाना प्रकार के फलफूलों के पेड़ व कई प्रकार के पशु-पक्षी वहां विचरण करते हैं । वहां गंधर्व देवता, सिद्ध, चारण प्रसन्न मन से विहार करते हैं। अप्सराएं नाचती हैं। उस पर्वत राज के सिर पर स्फटिक रत्न और वैदूर्यमणि की खानें भरी हैं। इस पर्वत की ऊंचाई मित्र के घर की तरह आकाश को स्पर्श करती हैं वह सदैव हिम से आच्छादित रहती है। गंगा की ध्वनि सदा सुनाई देती है । पार्वती तुमने बचपन में उसी पर्वत पर तपस्या की थी बारह वर्ष तक उल्टी टंग कर चौंसठ वर्ष तक सूखे पत्ते खाकर व कई सौ साल केवल पवन पर ही जीवित रह कर तप किया तभी तुम्हारा नाम अपर्णा हुआ । माघ मास में तुम जल में बैठ कर ठिठुरती। जेठ माह की दुपहिरया में पंचाग्नि व श्रावण मास का बरसता जल तुम्हें अपने तप से डिगा न सके । तुम्हारे पिता तुम्हारे तप के कष्टों को देखकर बड़े दुखी हुए वे चिन्तामग्न ही थे कि उसी समय नारद जी वहां आ पहुंचे गिरिराज ने अर्घ्य देकर उनका सत्कार किया और पूछा- हे देवऋषि! मेरा अहोभाग्य है। अपने आगमन का कारण बताइए। नारद जी ने कहा- हे गिरिराज! मैं विष्णु भगवान् का भेजा हुआ आपके पास आया हूं आपकी कन्या रत्न के लिए वे ही योग्य वर हैं। हिमवान ने कहा-" यदि विष्णु भगवान मेरी कन्या से विवाह करना चाहते हैं तो मैं प्रसन्नता पूर्वक देने को तैयार हूं। नारद जी ने तुरन्त यह शुभ समाचार विष्णु को दे दिया । उधर पार्वती ने जब यह समाचार सुना तो किसी से बात किये बिना ही अपनी सखी के पास चली गई और बिलख-बिलख कर रोने लगीं। सखी ने पूछा- है सखी उमा। क्या बात है । तुम्हें इतना दुख किस कारण से है? मुझे बताओ । मैं जी-जान से उसका समाधान करने का प्रयत्न करूंगी। उमा ने कहा- प्रिय सखी! मैं बालपन से ही शिव जी को चाहती हूं परन्तु मेरे पिता ने यह प्रस्ताव ठुकरा कर मेरा विवाह श्री विष्णु से करना चाहते हैं जो में नहीं चाहती इसलिये मैं अब पिता द्वारा दी गई इस देह का त्याग करूंगी। सखियों ने कहा

इसमे देह त्यागने की क्या बात है चलो कहीं ऐसे स्थान पर चलते हैं जहां तुम तप द्वारा शिव को प्राप्त करो और तुम्हारे पिता को इसका पता भी न चले। पार्वती मान कर सखियों के साथ चली गई और गहन बन में एक नदी के किनारे कन्दरा में जाकर सखी की सहायता से तप करने लगी ।

उधर तुम्हारे पिता तुम्हें घर पर न पाकर बहुत दुःखित स्वर में कहने लगे मैं तो नारद की बेटी के विवाह का वचन दे चुका हूं। ऐसे समय में कौन देवता-दानव, यक्ष या किन्नर, उमा को हर ले गया । यों कहते हुये वे मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। पुनः होश में आने पर लोगों ने पूछा - हे गिरिराज। आप क्यों दुखी हैं। अपने दुख का कारण हमें बताइये । इस पर उन्होंने पार्वती के हरण की बात बताई, कहा-जाने मेरी बेटी का काले सांप ने काट खाया या कि बाघ ने उसे अपना भोजन बना लिया और शोक-वश फिर रोने लगे। इतना कह कर गिरिराज उन्हें ढूंढने उसी वन में जा पहुंचे जो सिंह, भालू आदि हिंसक पशुओं से भरा था जिस कन्दरा में पार्वती तप कर रही थी। तप करते हुये जब वह पूर्णरूप से समाधिस्त हो गई तो भगवान शिव प्रसन्न हुए और कहा - देवि! तुम्हारे तप से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूं। और क्या चाहती हो? उमा ने कहा- स्वामी! जन्म- जन्मांतरों तक आप ही मेरे पति बनें, केवल यही मांगती हूं । तथास्तु कह कर शिव कैलाश को चले गये। पार्वती जी मनचाहा वर पाकर प्रसन्न हो गईं .। जो पूजा के लिये उन्होंने बालू की शिव-प्रतिमा बनाई थी। उसे नदी में बहाने के लिये गुफा से बाहर आई तो संयोगवश गिरिराज भी वहां पहुंच गये और पुत्री को अपने सामने पाकर स्नेहमग्न हो उन्हें गले से लगा लिया। चारों दिशाओं में तुम्हें खोजते हुये वे व्याकुल हो चुके थे उन्होने पूछा बेटी तुम हमें छोड़ कर इस भयानक वन में क्यों आ गई? तो पार्वती ने उन्हें कारण बता दिया । वे बोले-तुम पहले ही बता देती तो मैं तुम्हारा विवाह शिव से कर देता ।तुम्हारी इच्छा के विरूद्ध कभी तुम्हारी शादी कहीं और न करता औरहिमवान् ने शीघ्र ही पार्वती का विवाह शिवजी से कर दिया ।

शिव जी कहते हैं - हे देवि पार्वती ! सखियां तुम्हें हर कर ले गईं थीं इस कारण इस पवित्र व्रत का नाम "हरितालिका" पड़ गया । जो स्त्रियां इस परम पावन, सर्वफल प्रदायक अत्यन्त पुण्य-प्रद व्रत को करती है वे संसार में सुख भोग जन्म जन्मान्तरों तक अखण्ड सौभाग्यवती रहती हैं। भगवान की कृपा से उनके यहां, धन, सन्तान सुख-ऐश्वर्य की कभी कमी नहीं होती । इस व्रत को पूर्ण- विधि विधान से करना चाहिए ।

इस कथा को सुन कर फल, फूल, अक्षत, रोली, चन्दन व सारी सुहाग सामग्री पवित्र मन से शिव-पार्वती को उन घड़ी हुई प्रतिमाओं पर चढ़ा कर पूजन करें। दिन भी पूजन संकीर्तन कर रात्रि को जागरण करें। हरियाली का पूजन करते समय यह गीत गाकर आरती करते हैं:-

हरियाली तेरे पूजणे जो कौन गौरी आई
हरियालिया जो पूजने जो लछमी गौरी आई
हरियालिया जो पूजणे जो सीता गोरी आई
हरियालिया जो पूजणे जो राधा गोरी आई
हरियालिया जो पूजणे जो सर्व सुहागणी आईया

इसी प्रकार गीत गाते हुए पूजने के लिये आई हुई सभी स्त्रियों का नाम लेते हुए हरियाली मां से यह वर मांगती है :-

पूज पुजैदिया गोरिया क्या फल चाहिए
चाहिए अज सरसड़ होर घरे सौहरा
चाहिए खिन्नुए खलैन्दडा देर
चाहिए अज घरे सिरे जो साईं
चाहिए पंजो पुत्तर पज्यो घुन्घर वाले
हरियालिए तेरे बागा च क्या किच्छ होया
गरिया दाख बजूरिया नौ मण केले होए
कल जे खादे, जो चौल, अज ना भुख्डी होई
कल जे पीतिया दो चुलिया, अज न त्रीसडी होई कल जे सुती दो घडिया अज न नीदडी
कल जे सुती दो घडिया अज न नदरीडी आई
पहला डग आरतिया गौरा सोसधरो ए

नारियां पूजती हुई क्या फल मांगती हैं। सबसे पहले वे अपने घर की शोभा के लिए सास और ससुर को चाहती हैं। सास उसे लाड़-प्यार करती है। घर की मर्यादा सिखाती है। भविष्य में जीवन की सार्थकता से अवगत कराती है। व ससुर आज्ञा का पान करना व अनुशासन में रहने की शिक्षा देते हैं। घर में एक गबेद खेलते हुए छोटे देवर का होना भी आवश्यक है। जो भाभी-भाभी कह कर भाभी से छेड़खानी कर मन बहलाए। भाभी उस पर छोटे भाईयों का सा स्नेह लुटाए। उसे सिर के लिये सांई यानी पति परमेश्वर की भी कुशलता चाहिए। उसका सुहाग है। उसका प्यार व प्रतिष्ठा है उसी से मेरी दुनिया आबाद है। उसे पांच बेटे चाहिएं। जो हर प्रकार से धीर, वीर व आचारशील हो। मैं उनके घुंघर वाले वालों से वात्सल्य लुटाऊं।

एक पूछती है- हे हरियाली मां! तुम्हारे बागों में क्या-क्या फल होते हैं तो वह कहती कि गरी गोला, किशमिश छुहारे व नौ मन केले लगे हैं तुम जी भर कर खा सकती हो। सास पूछती है- लाड़ से कि बहू तुम्हें भूख तो नहीं? तो बहू कहती- नहीं मां। पिछले कल जो मैंने थोड़े से चावल खाये तो आज मुझे भूख नहीं लगी। कल जो मैंने चुल्ली भर पानी पिया तो आज मुझे जरा भी प्यास नहीं लगी। कल रात खूब सोई तभी तो आज मुझे नींद नहीं आ रही। सो मैं रात्रि को जागरण करूंगी और व्रत पूरा करूंगी।

अगले दिन यानि चौथा को सुबह ही नहा-धोकर घर व आंगन में फिर चौक डाल कर पतरी हंडाती है। ताजा फल फूल मिठाई व पूरियां बना कर शिव-पार्वती का पूजन करती हैं। ताजा गाय के दूध से शिव को स्नान करवा कर व्रत समाप्त करती हैं। सुन्दर वस्त्र और आभूषणों से सज्जित शिव पार्वती की प्रतिमाओं को नदी आदि के जल से प्रवाहित करती है। उसके उपरान्त जिस घर में प्रतिमा बनाई गई हो। सभी स्त्रियां वहां इक्ट्ठी होकर मंगलगान व बधाई के गीत गाती हैं। घरवालों सभी को भीगे हुए चने व शक्कर देकर सभी को विदा करती हैं।

औदा बधावा अगणे जो आया
अगण मैं रखदी सुताई के
औदिया सेइया ने मगल गाया
मेरे कृष्णो ने बसी बजाई
औदा बधावा इत देहली जो आया
देहला जो रखदी सजाई के
औदिया सेइया ने मगल गाया
राधा ने ढोलकी बजाई
औदा बधावा इत अन्दरे च आया
सेइया ने दित्ती है बधाई
जुग-जुग जीवण भैणे पुत्तर ता तेरे
राम रखे तेरी जोडी बणाई
दोहतू ता पोतू तेरे अगणे खेलन
रामा नित नित बज्जे बधाई

इसी प्रकार मंगल- गान करती हुई एक दूसरे को वधाईयां देती हुई प्रसन्नता-पूर्वक अगले वर्ष के व्रत की प्रतीक्षा में अपने अपने घरों को जाती हैं।

हिमाचल की संस्कृति में गूगा पीर

पी० सी० शर्मा

लोक कथाएं, दन्तकथाएं तथा किंवदन्तियां हमारी संस्कृति के मूल स्तम्भ हैं। जन-जीवन में इन गाथाओं की उपादेयता शाश्वत रही है। ऐसी ही लोक कथा गूगा पीर से सम्बन्धित है। हिमाचल प्रदेश में गूगा पीर लोगों के जनमानस में एक गहरी छाप लिए हुए है । गूगा पीर की पूजा का सम्बन्ध नाग पूजा से है ।

प्रति वर्ष अगस्त या सितम्बर मास में गूगा पीर की मढ़ियों/मन्दिरों में मेलों का आयोजन किया जाता है । लोगों का विश्वास है कि इनमें नागपूजा करने से सर्पदंश का भय नहीं रहता। हिमाचल प्रदेश में गूगा पूजा "गूगा नवमीं" के दिन बड़े हर्षोल्लास के साथ की जाती है ।

कांगड़ा जिले की तहसील पालमपुर के गांव सलोह, जो गूगा का मूल स्थान माना जाता है वहां प्रत्येक रविवार को मेला लगता है । प्रति वर्ष "गूगा नवमीं" के दिन विशेष मेले का आयोजन किया जाता है । इस मन्दिर का पुजारी एक घिरथ है। लोग वहां की पानी-मिश्रित मिट्टी का पान करते हैं। इस मिट्टी का छिड़काव घरों व गौशालाओं में भी करते हैं जिससे उनका पशुधन वर्ष भर ठीक रहे । उन्हें विश्वास है कि इस मिट्टी के पान करने से सांप के काटने का भय नहीं रहता । इस मन्दिर में गूगा गूगड़ी﴾गूगा की बहन﴿ व गुरू गोरखनाथ की पत्थर की मूर्तियां पत्थर के घोड़ों पर सवार, स्थापित की हुई हैं।

बिलासपुर ज़िले की तहसील घुमारवीं के गांव दब्यूत में गूगा का मन्दिर है जहां प्रति वर्ष "गूगा नवमीं" को एक विशाल मेले का आयोजन होता है। इसी तरह गांव लढयाणी का गूगा, चकराणा का गूगा', 'गाहर का गूगा'; सेऊ का गूगा' तथा 'गूगा मोहड़ा' इस ज़िले की प्राचीन संस्कृति के द्योतक हैं।

इसी प्रकार इस प्रदेश के ज़िला चम्बा, मण्डी, कुल्लू और ऊना में भी गूगा पूजा और मेलों का आयोजन किया जाता है ।

प्राचीन काल से ही भारत में देवी-देवताओं की पूजा करने की परम्परा चली आ रही है। वैसे भी हिमाचल प्रदेश को देवभूमि कहा है। देवी देवताओं की पूजा अपनी मनोकामना पूरी करने हेतु की जाती है। इनमें 'गूगा पीर' की पूजा विशेष महत्व रखती है। गूगा पीर को कई नामों से जाना जाता है -गूगा,वीर,गूगा जहर पीर तथा गूगा राणा इत्यादि ।

हिमाचल प्रदेश के कुछ क्षेत्रों में राखी के पावन त्यौहार से लेकर गूगा अष्टमी तक इस देवता की महिमा के गीत गाये जाते हैं। गांव के आठ या दस मनुष्य मिलकर (प्रचलित शब्द मण्डली) डमरू की लय में गाते-गाते घर-घर जाते हैं और अनाज़ भी इकठा करते हैं। गांव के लोग गूग्गा महिमा के गीत सुनने के लिए रात को मण्डली का डेरा रखते हैं। मण्डली में से कुछ लोग गाते-गाते खेलते (शारीरिक कम्पन) भी हैं तथा भूत-भविष्य की घटनाओं के विषय में बताते (प्रचलित शब्द पुछां,(PREDIONS) हैं ।

गूगा नवमीं के दिन लगभग प्रत्येक घर से एक आदमी अपने तथा दूसरों के घरों के आंगन में खड़ा होकर पुकारता है, 'जै गूगा जहर पीर' अर्थात् गूगा जहर पीर की जै हो । बदले में उस घर का कोई सदस्य उसकी झोली में आटा डालता है। उसी आटे की रोटियां(प्रचलित शब्द"रोट") पकाकर सुबह ही नहा-धोकर बिना कुछ खाए पीये गूगा पीर की माढ़ी(मन्दिर) में जाकर चढ़ाते हैं। उसी समय राखी भी खोलकर "गूगा की माढ़ी" पर चढ़ा देते हैं। इसकी मूर्ति के पास ही नाग की मूर्ति पत्थर पर अंकित की हुई रखी होती है। जिसके ऊपर दूध चढाया जाता है।

ऐतिहासिक तथ्यों से प्रमाणित होता है कि गूगा पूजा नाथ सम्प्रदाय अर्थात् बारहवीं सदी से चली आ रही है ।

हिमाचल प्रदेश में प्रचलित प्रसिद्ध लोक गाथा के आधार पर गूगा के जन्म के विषय में इस प्रकार की धारणा है कि राजा "जेडर" के कोई सन्तान नहीं थी। उसने तथा उसकी पत्नी 'बाछल' ने बारह वर्ष तक गुरू गोरखनाथ की भक्ति की। गुरू ने उनकी भक्ति से सन्तुष्ट होकर उनको वहां पर एक यज्ञ करने को कहा । राजा तथा रानी बाछल ने नाना प्रकार के खान-पान तैयार करवाये । वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर गुरू के पास जाने को तैयार हो गए ।

उधर रानी बाछल की बहन "काछल" भी निःसन्तान थी। वह बाछल से द्वेष भावना रखती थी । उसने अपनी "गोली" (दासी) के द्वारा बाछल को संदेश भिजवाया कि वह (काछल) सख्त बीमार है। अतः वह (बाछल) अपने पहने हुए वस्त्राभूषणों को मुझे दे दे। बाछल ने अपने पहने हुए वस्त्राभूषण गोली द्वारा भेज दिए। काछल वस्त्राभूषण धारण करके गुरू गोरखनाथ के पास पहुंच गई । गुरू ने उसको बाछल समझकर अपनी झोली

से दो फल निकाल कर खाने को दे दिए । जिनको खाने से उसके दो जुड़वां पुत्र 'अर्जन' और 'सुर्जन' हुए ।

रानी बाछल जब गुरू गोरखनाथ के पास पहुंची तो पता चला कि काछल ने उससे छल किया है। फिर भी गुरू ने एक फल बाछल को प्रसाद के रूप में खाने को दिया जिसको खाने से गूगा का जन्म हुआ ।

समय बीतने पर गूगा के मौसेरे भाइयों अर्जन और सुर्जन ने उस पर प्राण घातक हमला कर दिया परन्तु गूगा ने उन दोनों को मौत के घाट उतार दिया। माता बाछल को जब इस घटना का पता चला तो उसने क्रोधावेश गूगा को श्राप दे दिया । जिसके परिणाम स्वरूप गूगा समाधिस्था हो गया । कहते हैं कि इसी समाधि अवस्था में ही गूगे ने सर्पशक्ति प्राप्त की थी ।

गूगा की पत्नी सूरियल की भक्ति के फलस्वरूप गूगा अपने नीले घोड़े पर सवार होकर उससे मिलने आया करता था और पुनः अपना सर्प रूप धारण करके चला जाता था। तभी से गूगा को नाग देवता के रूप में भी पूजा जाता है।

आज के वैज्ञानिक युग में भले ही यह सब कुछ एक कहानी ही प्रतीत हो परन्तु यह विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि गूगा पीर आज भी लोगों की श्रद्धा और भक्ति का प्रतीक है ।

फारसी की एक कहावत है-

आवाज़े खलक को,
नक्कारा-ए-खुदा समझो ।

अतः इस क्षेत्र में लोगों की गूगा पीर पर आस्था इस उक्ति को शब्दशः सार्थक करती है ।

दौला सिद्ध और कौला सिद्ध

- डॉ० रत्न चन्द शास्त्री

हिमाचल प्रदेश अनादिकाल से ऋषि-मुनियों, साधु-सन्तों तथा सिद्ध-महात्माओं की साधना स्थली रहा है। यहां का सर्वजन सुलभ प्रशान्त, एकान्त एवं रमणीय वातावरण आध्यात्मिक साधकों, सिद्धों तथा तापसों को सदा अपनी ओर आकर्षित करता रहा है। यही कारण है कि श्रद्धालु साधक को भारत के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा यहां ऐहिक सुख तथा पारलौकिक सिद्धि की शीघ्र प्राप्ति होती है। अतः एव मातृशक्ति पार्वती ने भी अखिल विश्व का परित्याग कर हिमाचल सुता कहलाकर इस प्रदेश को महिमा मण्डित किया है। इस पुनीत धरती की ही यह निजी विशिष्टता है जो कि यहां के निवासियों में गीतोक्त देवी गुण स्वभवतः ही विद्यमान है। विविध देवताओं, ऋषियों, सिद्धों तथा पवित्र स्थालों के प्रति अनन्य आस्था यहां का जीवन दर्शन है। जिस प्रकार हमीरपुर जनपद के प्रत्येक गांव अथवा घर में स्थापित बाबा द्योट सिद्ध जनमानस में श्रद्धेय स्थान रखते हैं, उसी प्रकार यहां 'दौला सिद्ध' तथा 'कौला सिद्ध' को भी श्रद्धास्पद माना जाता है। इस जन-पद के प्रत्येक घर अथवा गांव के प्रवेश द्वार या प्रांगण में बाबा बालक नाथ की आधार-पादुकाएं {पातका} एक चबूतरे पर प्रतिष्ठापित मिलती है तो घर के भीतर अथवा पार्श्व में दौला सिद्ध तथा कौला सिद्ध की स्थापना के प्रतीक-- प्रस्तर प्रतिमा, चिमटा आदि दृष्टिगोचर होते हैं। यहां सिद्धों तथा नागों के मन्दिर भी विराजित मिलते हैं। भौतिक औषधियों के उपचार से निराश पारलौकिक शक्ति सन्पन्न सिद्धों नागों के प्रति सश्रद्ध श्रद्धालु आज के इस वैज्ञानिक युग में भी इनसे मात्र मनौती करके ही भावनामयी अचूक औषधियां प्राप्त करते हैं। इनके आगे की गई भक्ति-भाव युक्त प्रार्थना विविधताओं के शमन का सरल तथा सुगम उपाय माना जाता है।

दौला-सिद्ध- हमीरपुर जनपद के नदौण नगर से "बड़ा" होकर सुजानपुर को जाने वाली सड़क के किनारे स्थित "जीहण" नामक-स्थान से उत्तर की ओर पैदल चार किलो मीटर दूर यह प्रख्यात सिद्ध स्थान विद्यमान है। "दौला सिद्ध" उन्हीं के नाम से सुप्रसिद्ध यह पावन स्थल व्यास नदी के पुनीत तट पर सुरम्य अरण्य में स्थित है।

जनश्रुति के आधार पर आज से अनुमानतः साढे तीन-चार सौ वर्ष पूर्व सिद्ध संप्रदाय में दीक्षित दौला सिद्ध विपाशा तीरस्था इसी शान्त, सुरम्य वन में साधना

में लीन रहा करते थे। इस स्थान से नदौण की ओर पांच किलोमीटर दूर "चोड़ू" नामक गांव के अन्तर्गत "पताजी" नाम से प्रसिद्ध श्मशान घाट के पास "दौला की गुफा" भी स्थित है। यहां भी दौला साधना किया करते थे। गुफा के पास एक शिवालय भी है। वे "दौला सिद्ध" स्थान से यहां तक व्यास नदी के जल मार्ग से यात्रा किया करते थे। नदी जल पर बिछी सफेद चद्दर ही उनकी नौका हुआ करती थी।

सिद्ध के दर्शनों के लिए अनेक श्रद्धालु आया करते थे। उनके कृपा-प्रसाद से उन्हें आध्यात्मिक जिज्ञासा से संतुष्टि तथा सांसारिक कष्टों से मुक्ति प्राप्त होती थी। दौला सिद्ध के अनुग्रह से सश्रद्ध दर्शनार्थी ऐहिक मनो-कामनाएं प्राप्त कर तथा आध्यात्मिक ज्ञान की चर्चा को सुनकर अपने को कृतार्थ समझते थे। कहते हैं उन्होंने ऋद्धि तथा सिद्धि को वश में किया था । यदि कोई आर्थिक संकट के निवारण हेतु उनसे याचना करता तथा वे करूणार्द्र होकर उस पर रीझ जाते तो उसे ऋद्धिमान (धन सपन्न) कर देते थे। अतएव लोग उन्हें "इच्छाधारी" योगी भी कहा करते ।

एक बार दौला सिद्ध अपने अनेक अनुयायियों तथा सेवकों के मध्य अपने आसन पर विराजमान थे। सामने अखण्ड धूना प्रज्वलित था। उनमें से एक श्रद्धालु सेवक ने अपना आर्थिक-संकट उनसे निवेदित किया। दयालु सिद्ध ने अपनी झोली से कुछ रूपये-पैसे निकालकर उसे दिए। सिद्ध को यह सिद्धि प्राप्त थी कि उनका दिया हुआ एक पैसा भी अक्षय भण्डार बन् जाता । उनके पास आने वाला गांव चोड़ू का एक दंभी सेवक भी उस समय पास बैठा था। सिद्ध की मानता से सर्वथा अनभिज्ञ तथा धन लोलुप उस व्यक्ति के मन में सिद्ध का वध कर के सारा ही धन प्राप्त करने का कुविचार पैदा हुआ । वह उचित अवसर की ताक में रहने लगा। सिद्ध को एकान्त में पाकर उसने उनके सिर पर शस्त्र का प्रहार कर ही दिया। सहसा सिद्ध का सिर धड़ से अलग होकर ताल नामक खड्ड के व्यास संगम पर जा गिरा। धड़ वहीं पड़ा रहा । घातक के हाथ सिद्ध-आसन के नीचे से तथा झोली में से विभूति (राख) के अतिरिक्त और कुछ न लगा । उसे पश्चाताप तो हुआ, परन्तु अब क्या लाभ था। जन विश्वास है कि यह घटना भी सिद्ध की "होनी" का चमत्कार ही था । हत्यारा अपने घर की ओर लौट गया । दौला सिद्ध में व्यास नदी के किनारे शस्त्र-प्रहारों से चिह्नित एक प्रस्तर-प्रतिमा की चट्टान आज भी देखी जा सकती है। चट्टान के मध्य भाग में एक छेद है, जिसमें से फैंकी गई वस्तु नीचे बहते व्यास दरिया में जा गिरती है। इस विशाल पाषाण को ही दौला सिद्ध मान कर पूजते हैं।

विपाशा तीर पर स्थित इस स्थान का निस्तब्ध प्रशान्त वातावरण ही एक ऐसा अद्भुत तथा मनोरम दृश्य उपस्थित करता है, जिससे यात्री को यहां पहुंच कर

अनायास ही मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। निरन्तर अवाध गति से प्रवाह मान,कल-कलाती व्यास नदी का परिक्रमानुमा प्राकृतिक बहाव भी दर्शक को बलात् अपनी ओर आकर्षित करता है। प्रतीत होता है कि भव का पाश काटने में समर्थ यह ﴾विपाशा" भी इस परिक्रमा द्वारा सिद्ध के महत्व को प्रमाणित करना नहीं भूलती है।

दौला सिद्ध के एकमात्र शिष्य कौला थे। जिस दिन दौला पर प्रहार किया गया, उन दिनों वे गांव "ठा टिक्कर " में रहते थे। कौला को सिद्ध के वध का वृत्तान्त उसी रात्रि को दिव्य वाणी द्वारा स्वप्नावस्था में प्राप्त हुआ। दौला ने कहा- "उठो, जागो और मेरी ﴾स्थान दौला सिद्ध की﴿ ओर चल पड़ो। कौला ने भी उसी समय गुरू निर्दिष्ट योगमार्ग से दौला की तपस्थली की ओर प्रस्थान किया। वहां पहुंच कर उन्होंने सिर से अलग गुरू का धड़ देखा। धड़ से सिर को जोडने के लिए वे सिर को ढूंढ़ने लगे। उन्हें व्यास नदी के किनारे ताल खड्ड के संगम पर गुरू का छिन्न-सिर प्राप्त हो गया। कौला ने सिर को धड़ से जोड़ दिया । सिर जुड़ते ही दौला सिद्ध ने अपने वध की घटना को आद्यन्त कह सुनाया "मैं अब यह शरीर छोड़ रहा हूं। इश्वर की यही इच्छा है। तुमने जीवित-समाधि लेना। मेरा वध एक अवोध धन के लोलुप ने कियाहै। उसे अपने इस कर्म का फल तो मिलेगा ही। परन्तु इस का प्रभाव भावी पीढ़ी पर भी पड़ेगा। आज के बाद इस वधिक के वंश में सन्तान अंगहीन तथा व्याधि-ग्रस्त उत्पन्न होगी। इन पर अग्नि का प्रकोप भी बना रहेगा । ----हां, यदि इसके वशंज मनौती तथा क्षमायाचना पूर्वक प्रायश्चित करेंगे तो मैं उनकी ओर से भेंट किया गया हलवे का प्रसाद ही स्वीकार करूंगा । यदि वे बकरा भेंट में चढ़ाएं तो उसका वध नहीं किया जाया करेगा"। दौला सिद्ध की उक्त भविष्यवाणी सत्य प्रमाणित हुई। ऐसा आज भी सुनते हैं कि गांव चोड़ू में स्थित﴾पटयार्च﴿ राजश्त परिवार के घर अग्निकाण्ड का शिकार होते रहे हैं तथा यह भी कहते हैं कि इनके परिवार में अंगहीन शिशु उत्पन्न होते थे। सिद्ध की शरण में पहुंच कर इन लोगों ने पूर्वजों के अपराध की क्षमा-याचना की। रोट तथा कड़ाही﴾हलवा﴿ भेंट लेकर वे सिद्ध स्थान पर पहुंचे थे। तब ही उन्हें सिद्ध के प्रकोप से रक्षा मिली थी। आज भी ये लोग वंश' परम्परा के अनुसार सिद्ध की मनौती किया करते हैं। इनके द्वारा सिद्ध को समर्पित बकरे का वध नहीं किया जाता है।

सिद्ध-यात्राः- बाबा द्योट सिद्ध की यात्रा की तरह इस सिद्ध की यात्रा भी सारा वर्ष चलती रहती है। । विशेष यात्रा ज्येष्ठ विक्रमी सौर मास के प्रथम बृहस्पतिवार से आरम्भ होकर सारा मास होती है। श्रद्धालु यात्री दूर-दराज के क्षेत्रों से सिद्धारण्य में पहुंचकर सिद्ध को बधाकरा﴾वर्धापन भेंट﴿ समर्पित करने हेतु न केवल सपरिवार अपितु कुल के समस्त परिवारजनों सहित सहयात्रा किया करते हैं। कौलासिद्ध के वंशज गड़खाल के लिए

रात्रिवास करना अनिवार्य माना जाता है। "गड़खाल" राजपूत कहते हैं कि ऐसा हमें सिद्ध का आदेश है। इस प्रकार की यात्रा में खान-पान तथा यात्रा का अन्य व्यय यात्रा के मुखिया को ही वहन करना होता है। यह सहयात्रा भी बृहस्पतिवार को ही की जाती है। यहां यह भी उल्लेख्य है कि सिद्ध स्थान पर रात्रिवास करने वाले यात्रियों को अपने साथ भोजन-पान नहीं ले जाने पड़ते । यहां बनी एक सराय के एक कमरे के भीतर में पात्र रखे रहते हैं। इस कमरे को ताला नहीं लगाया जाता है। जनविश्वास है कि यहां से जो व्यक्ति किसी भी वस्तु को चुराने का दुस्साहस करता है, सिद्ध की ओर से उसे अनिष्ट की चेतावनी दी जाती है। इस प्रकार की अनेक घटनाएं घटित हुई हैं। सिद्ध की महिमा को दर्शाने वाली पांच वर्ष पूर्व घटी एक घटना का उल्लेख यहां अप्रासंगिक न होगा । "आज से पांच वर्ष पहले की बात है। एक व्यक्ति ने सिद्ध-स्थान की सराय से एक लोटा चुरा लिया। लोटा लेकर वह जा रहा था। अचानक उसे आगे चलने की ओर का रास्ता दिखाई देना बन्द हो गया। यह भी आश्चर्य था, जब वह सिद्ध की ओर वापिस चलता तब उसे साफ-साफ रास्ता दिखाई देता था। किंकर्तव्य-मूढ वह वहीं रास्ते पर खड़ा आखों पर हाथ रखे हुए सोच ही रहा था कि उधर से एक स्थानीय व्यक्ति उसी रास्ते से गुजरा। चोर व्यक्ति ने उसे अपना दुःख सशंकित मन से बताया। स्थानीय व्यक्ति को समझने मे देर न लगी। उसने पूछा-" सच बताना, तुमने दौला सिद्ध से कुछ चुराया तो नही है । व्यक्ति ने सच ही बता दिया। यात्री ने उसे फिर समझाया कि तुम यथाशीघ्र लौट कर चुराई वस्तु को सराय में रख आओ तथा सिद्ध से इस अपराध की क्षमा याचना करो"। उसने ऐसा ही किया तथा स्वस्थ नेत्र-ज्योति पाकर लौटा"।

इस प्रकार सिद्ध के अरण्य में जीव निर्भय विचरते हैं। सिद्ध के आदेश से यहां शिकार खेलना वर्जित समझा जाता है। अनिष्ट की आशंका से तथा सिद्ध-भय से लोग ऐसा प्रयास नहीं करते हैं।

<u>दौला सिद्ध के अन्य मन्दिरः</u>- सुजानपुर टीहरा से पन्द्रह किलोमीटर पूर्वोत्तर की ओर गांव "ठाँ टिक्कर" में दौला सिद्ध की एक प्रस्तर प्रतिमा प्रतिष्ठापित है। यहां एक कमरे में विराजित यह मूर्ति एक बालिश ऊंची तथा डेढ बालिश लम्बी है। कमरे के ही भीतर डेढ मीटर ऊंचे चतुष्कोण मन्दिर में इसके साथ ख्वाजापीर, पंजपीरी (पांच पीर) तथा नागसिद्ध (शेषनाग) भी विराजते हैं। मन्दिर में त्रिशूल, चिमटा , शंख तथा घण्टी भी रखे रहते हैं। इस मन्दिर के दर्शनों के उपरान्त दर्शक के मन में हिन्दू तथा मुस्लिम दो आस्थाओं के विश्वास बिन्दुओं को देखकर उदार भारतीय संस्कृति का स्वरूप सामने आता है।

'गडरवाल' उपजाति के राजपूत जो कौला सिद के वंशज पुजारी हैं, इस मन्दिर में भी प्रतिदिन पूजा किया करते हैं। एक पुजारी जीहण के पास स्थित दौला सिदमेंपूजा करने आठवें दिन यहां§ठा टिक्कर गांव§ से जाता है।

बौडुओ धार का मन्दिरः- बौडुआं दी धार गांव में भी सिद दौला का मन्दिर "गड़वाल" वंशीय ठाकुर मस्त राम के नेतृत्व में निर्माणाधीन चल रहा है। ठा टिक्कर स्थित मन्दिर से पूर्व दक्षिण की ओर यह तीन किलो मीटरकीदूरी पर है। यहां भी प्रतिदिन सिद की पूजा होती है।

इस क्षेत्र के 'गडरवाल' राजपूत परिवारों के प्रत्येक घर में एक कोने पर दौला सिद की स्थापना तथा बाहिर एक चबूतरे पर सिद बाबा बालक नाथा का पादुकाधार §पताका§ स्थापित मिलता है। सिद्ध कौला के वंशज तथा अन्य श्रदालु यात्री गांव "ठा टिक्कर" स्थित सिद मन्दिर में दौला सिद्ध की संक्षिप्त सी मनौती कर लिया करते हैं। इन्हें एक वर्ष के भीतर धुर स्थान की यात्रा अवश्य ही करनी होती है। इसी गांव में स्थित दौला की मनौती तथा पूजा के उपरान्त श्रदालु उच्च शिखर पर स्थित समाधि पर कौला की पूजा करते हैं। इन दोनों सिदों में अग्रस्थान कौला के अग्रज तथा सिद्ध दौला को दिया जाता है।

कौला सिदः- कौला सिद का समाधि स्थल सुजानपुर से पन्द्रह किलोमीटर पूर्वोत्तर दिशा की ओर "गांव ठा टिक्कर" में ही स्थित दौला सिद्र में मन्दिर से पूर्व की ओर एक ऊंची पहाड़ी पर प्रतिष्ठापित है। यह उच्च श्रृंग वर्गाकार में पचहतर कनाल है। यह पर्वतीय स्थल पूर्णतया सिद के नाम पर समर्पित है। यह पावनतम उच्च शिखर अलसान, अमलतास तथा मैहदड़ आदि अनेकविध स्थानीय वृक्षों की सघनता से मनोहारी एवं मालती आदि विविध वन्य पुष्पों से सुवासित रहता है। इस भू-भाग के वृक्षों, लताओं तथा पुष्पों को सिद द्वारा सर्वथा अभय प्राप्त है। अतएव सिद्र की दिव्य शक्ति से सुरक्षित इस "वनखण्डी" से वृक्ष काटने की बात सोचना तो दूर रहा, सूखे वृक्ष से लकड़ी काटना भी वर्जित है। हां, वन को किसी भी प्रकार की क्षति पहुंचाए बिना प्रणामपूर्वक सिद्ध का आदेश प्राप्त कर केवल वृक्ष के नीचे पड़ी हुई सूखी लकड़ी उठाई जा सकती है। सूखी लकड़ी पर भी यहां शस्त्र का प्रयोग निषिद माना जाता है। सिद्ध के इस दैवी आदेश का यहां के निवासी पूर्ण तत्परता से पालन करते हैं। अन्यथा अनिष्ट अवश्यम्भावी हो जाया करता है। सिद्ध-वन को हानि पहुंचाने वाले पशुओं का इस भूमि पर चरना तथा विचरना मना है। परन्तु गाए तथा उसके दूध पीते बछड़े वे-रोक-टोक चरसकते हैं। ऐसी घटनाएं यहां अनेक घटित हुई हैं कि जब भी किसी ने उक्त नियमों का उल्लंघन किया तो उसे तत्काल ही अनिष्ट फल भोगना पड़ा है। अनेक बार बैल आदि पशु ऊपर से बिना शारीरिक क्षति पहुंचे नीचे गिर पड़े तथा लकड़ी आदि वन से लेने पर भी

हानि उठानी पडी। अतः इसे दिव्यशक्ति द्वारा सुरक्षित "अभयारण्य" कहा जा सकता है। अतएव यहां के वृक्ष लताएं भी अपनी प्राकृतिक अवस्था में स्थिर है।

आज से लगभग साढ़े तीन-चार सौ वर्ष पूर्व हमीरपुर जन पद की ग्राम पंचायत चारिया दी धार में स्थित गांव "लम्मया दी धार" में कौला सिद्ध का जन्म ﴾गडरवाल राजपूत परिवार में हुआ। वे एक बहिन तथा चार भाई थे। एक अन्य पुष्ट धारणा के अनुसार इन्हें दौला सिद्ध का अनुज माना जाता है क्योंकि "गडरवाल" वंशीय राजपूत दोनों ही सिद्धों की एक समान पूजा करते हैं।

कौला जब पांच वर्ष के थे, तब इन्हें दौला सिद्ध का शिष्यत्व प्राप्त हो गया था। एक दिन कौला अपने गांव में घूम रहे थे। अचानक वहां सिद्ध दौला पहुंचे वे उन दिनों जीहण के पास स्थित "दौला सिंह" स्थान पर रहा करते थे। कौला को अपने साथ लेकर वे "महली" तथा व्यास नदीर के संगम पर स्थित "पलाही" नामक स्थान पर पहुंचे। व्यासनदी के जल पर सफेद चादर बिछा कर दोनों ही उस पर बैठ कर दौला सिद्ध स्थान पर पहुंचे। यहीं दौला ने कौला को सिद्धत्व का प्रथम उपदेश किया। परिवार जनों से प्रच्छन्न वे यहां पांच दिनों तक ही रहे। उधर कौला के माता-पिता तथा अन्य परिवार के बन्धु बालक के अकस्मात् लुप्त हो जाने से चिन्तित व खिन्न थे। उन्होंने बालक को हरसंभव जगह खोजने का प्रयत्न किया। अब वे निराश तथा हताश हो चुके थे। इधर दौला को स्वसिद्धि के बल से यह सब विदित था कि कौला के खो जाने से सब लोग चिन्तित है। दौला ने कौला से कहा --"आज तुम्हें यहां आए पांच दिन व्यतीत हो गए है। तेरे बिना माता-पिता तथा अन्य जन बहुत व्याकुल हैं। मैं तुझे अब तुम्हारे घर भेज दूंगा परन्तु तूने इस रहस्यमयी घटना को सुगुप्त बनाए रखने का प्रयत्न करना"। कौला ने पूछा-" गुरूदेव, मेरा घर तो यहां से बहुत दूर है, मैं वहां अकेला कैसे पहुंच पाऊंगा"। तुम चिन्ता मत करो, गुरू ने पुनः कहा। कहते हैं कि तब दौला ने कौला की दोनों आंखे बन्द करवाई तथा उससे कहा कि तुमने अपनी आखें तब और वहीं खोलना जब और जहां तेरे पांव स्वतः एव पृथ्वी का स्पर्श करें। वहां आंखे खोलकर तूने खड़े हो जाना। सिद्ध-कृपा से आकाश मार्ग पर यात्रा करते हुए कौला के पावों ने गांव "ठा टिक्कर" के पास खोला सन्नणादामे ही पृथ्वी का स्पर्श किया। कौला वहां से पैदल चलकर अपने घर पहुंचे ।

कौला के अचानक घर पहुंचने पर परिवार जनों के हर्ष तथा आश्चर्य का कोई ठिकाना न था। कौला से जो भी मिलता वह एक जैसे प्रश्नों को पूछता--"कौला, तुम कहा थे ? कब आए? कैसे आए? परन्तु कौला गुरू के आदेश को ध्यान मे रख कर मौन ही रहते थे। एक दिन कौला की बहिन छल-बल से इस गोपनीय घटना को जानने

में सफल हो गई। कौला ने बहिनकी मोहमयी ममता के अधीन हो कर उसे आद्यन्त घटना सुना दी। बहिन के ही मुख से सुनी उक्त घटना आज भी वृद्ध "गडवाल" राजपूतों को ज़बानी स्मरण है। कालान्तर में मूल पैतृक गांव "लम्मयाँ दी धार" को छोड़कर कौला परिवार जनों के साथ ही "ठा टिक्कर" में रहने लगे। यहां एक विरक्त साधु की सिद्धवृति से जीवन-यापन करते हुए वे सदा अपनी साधना मे लीन रहा करते थे। वे साधारणजन के बौध से अगम्य, अभूतपूर्व, असंभावित सी घटनाएं व दृष्टान्त यदा-कदा दिखाते रहते थे ।

कहते हैं, एक बार कौला को भैंसों का दूध दूहने भेजा गया। उन्होंने भैंसो से दूह कर एक बड़े बर्तन में डाला तथा गांव में उन लोगों के घर बांट दिया, जिनके यहां वर्षों से दूध नहीं था। परिवार जन उन पर बहुत रूष्ट हुए तथा दूध बांटने का कारण पूछा। कौला ने कहा-"बन्धुजनों, मैंने दूध उन लोगों को बांटा है, जिनकी दूध पीने की इच्छा थी । हमें वैसे भी तो हर वस्तु को बांट कर ही खाना चाहिए। यदि तुम लोग नाराज होते हो, तो मैं दूध दूहने अब नहीं जाऊंगा। परन्तु यह विचार तुम्हारे हित में नहीं होगा" अगले दिन पशुशाला{गोष्ठ} में जो व्यक्ति गया उसे रिक्त हाथ ही लौटना पड़ा। उसके आश्चर्य की कोई सीमा न थी, जब उसने पशुशाला से सब भैंसो को लुप्त देखा । अब कौला का जीवन अधिकतर गांव ठा टिक्कर में ही व्यतीत होने लगा। परन्तु अपने गुरू दौला के पास उनका योग सिद्धि से तथा साक्षात् भी आना जाना निरन्तर होता था।

उन दिनों कौला अपने गांव "ठॉ टिककर" में रहते थे। एकरात्रि को दौला ने उन्हें दिव्य, आकाशवाणी द्वारा सन्देश भेजा । पूर्वोक्त प्रकार से निर्दिष्ट दौला सिद्ध पहुंचकर कौला ने जब गुरू के सिर को धड़ से जोड़ा तब दौला ने उन्हें कुछ उपदेश तथा आदेश दिया "तुमने जीवित समाधि लेना"। गुरू की आज्ञा का पालन करते हुए कौला सिद्ध ने भी समाधि लेने से पूर्व एक गहरा गर्त खुदवा कर तथा अन्त्येष्टि का सारा सामान तैयार करवा लिया था। उसी गर्त में समाधिस्थ होकर ब्रह्म-भाव प्राप्त किया था। अनन्तर श्रद्धालुओं ने उस गर्त को कौला द्वारा निर्दिष्ट प्रकार से पूरित किया था।

ब्रह्म-लोक को प्राप्त करने से पूर्व कौला ने वहां उपस्थित वंशजों तथा सेवकों को कहा था " जो भी श्रद्धालु मेरी समाधि पर सच्चे मने सुखणा{मनःकामना} करेगा, उसकी वह इच्छा गुरू-कृपा से अवश्य पूर्ण होगी । मेरी समाधि पर मुझे केवल रोट तथा कड़ाही{हलवा} ही भेंट किया जायेगा, मैं उसे ही स्वीकार करूंगा। बकरा आदि की पशुबलि अथवा भेंट मुझे न दी जाए । मेरी मनौती या पूजा के पूर्व मेरे गुरू दौला की पूजा की जानी चाहिए"।

"गडखाल" राजपूत तथा अन्य श्रद्धालु सिद्ध के निर्देश के अनुसार ही कौला सिद्ध की मनौती के पहले दौला सिद्ध की पूजा किया करते हैं। ऊंची पहाड़ी पर प्रतिष्ठापित कौला की पूजा कामना की पूर्ति के अतिरिक्त प्रत्येक मांगलिक कृत्य तथा नवान्न घर आन पर रोट तथा कड़ाही के भोग से संपन्न मानी जाती है। समाधि के पास ही स्थित पीपल के वृक्ष पर "पहाड़िए" की स्थापना भी की गई है, कौला की अर्चना के उपरान्त इस की भी पूजा करते हैं। प्रत्येक यात्री को सिद्ध की पहाड़ी पर नंगे पांव चढ़ना होता है। जन विश्वास है कि यह सिद्ध प्रतन्छत्रप्रत्यक्ष है क्योंकि जिस भी श्रद्धालु ने श्रद्धावनत होकर वांछित फल हेतु सिद्ध के आगे प्रार्थना की है, उसे अवश्य सफलता प्राप्त हुई। इस के अतिरिक्त अनेक श्रद्धावानों ने स्वप्न में सिद्ध के दर्शन भी किये हैं। यहां आया यात्री पूर्ण काम होकर ही लौटता है: "अत्रागच्छ न्ति मे भक्ताः सफलाशाः भवन्ति ते"।

यह तथ्य उल्लेखनीय है कि आज तक जिन लोगों ने प्रमोदवश अथवा जानबूझ कर सिद्ध या सिद्ध स्थान के नियमों का उल्लंघन किया या कभी अहंकारवश उपहास किया है उन्हें सिद्ध ने अपनी शक्ति का अस्तित्व अवश्य दिखाया है। परन्तु यह एक सिद्ध की महिमा का सुखद आश्चर्य है कि सिद्ध की अवमानना करने वाले को चेतावनी भर देकर सचेत किया जाता है उसे जन, धन अथवा शरीर की किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाई जाती है। सिद्धके प्रति अटूट जन-आस्था के परिचायक एक दो उदाहरण यहां प्रस्तुत करना अनुचित न होगा ।

उपहास का फलः- आज से पचपन वर्ष पहले की बात है। गांव ठा टिक्कर में लड़के का विवाह था। बारात गांव पुष्प ग्राम (पुल्लांदा ग्रां) से बधू के साथ लौट आई थी। गडखाल वंश परम्परा के अनुसार वर-बधू द्वारा कौला सिद्ध का पूजन चल रहा था। सिद्ध पूजन हेतु ग्रामवासी महिलाएं, पुरूष तथा वधूपक्ष की ओरसेआए अतिथि भी सिद्ध समाधि के समक्ष उपस्थित थे। सभी नतमस्तक प्रणाम किए जा रहे थे, कुछ लोग प्रदक्षिणा कर रहे थे। इसी वीच वधू-पक्ष के अतिथियों में से एक चौदह वर्ष का युवक (बालक) सिद्ध पूजन का पुनःपुनः उपहास कर रहा था। वह अतिथि था इसलिए सब को सिद्ध के प्रति निज श्रद्धा पर आघात सहन करना पड़ रहा था। इतने में एक अद्भुत घटना घटित हुई। वह वालक वायु वेग से ऊपर उठाया गया तथा सिद्ध स्थल से नीचे तीन सौ गज की दूरी पर कंटीली झाड़ियों में से लुढ़कता हुआ जा गिरा परन्तु यह एक सुखद आश्चर्य था कि इतनी दूर तथा कांटों पर से फैंका जाने पर भी उसे न कहीं चोट आई थी न ही कोई कांटा ही चुभा था। लोगों ने उसे स्वस्थ खड़े हुए को ही देखा। उस युवक ने बताया कि यह मुझे भी विदित नहीं हो सका कि किसने ऊपर उठाया तथा

कब नीचे फैंका। सिद्ध समाधि पर जा कर उस युवक ने अपने अपराध की क्षमा याचना की।

लकडी लाने का फलः- आज से बीस वर्ष पहले श्री लच्छमण सिह 'गडरवाल' सिद्ध वन से अमलतास की सूखी टहनी को जिसकी जड़ जमीन में धंसी थी घर ले आया। सम्भव है कि वह जड़ हरी थी। बस फिर क्या था, सिद्ध उस पर प्रकुपित हो गये। अन्धेरा होते ही रात को स्लेट पोश मकान पर पत्थारों की वौछार आरम्भ हो गई। यह क्रम एक सप्ताह तक चलता रहा। रात को गांव के सब लोग उस घर में एकत्रित हो जाते परन्तु किसी को कोई पता न चलता कि ये पत्थार कौन, किधर से फैंक रहा है। यह भी एक आश्चर्य था कि मकान तथा स्लेटों को किसी भी प्रकार की क्षति नहीं पहुंची थी। तुलसी नामक एक सयाने {बृद्ध} ब्राह्मण के कहने से गृहस्वामी ने वन से लकड़ी उखाड़ने की सिद्ध से क्षमा मांगी। कड़ाही {हलवा} भेंट की। सपरिवार उसने क्षमा याचना की, तब उसे पाषाण वृष्टि से मुक्ति मिली थी।

इसी प्रकार सिद्ध-वन में पशु चराने आदि पर चेतावनी के अनेक उदाहरण है। पर यह सिद्ध कृपा का अनूठा चमत्कार ही है कि आज तक किसी को भी तन, धन अथवा जन की हानि नहीं पहुंची है। कौला ने शरणागत श्रद्धालु को उसी श्रद्धा तथा विश्वास के अनुरूप फल प्रदान किया है। आज भी असंख्य यात्री निज भावना के अनुसार यहां पहुंच कर विविध पापों से मुक्ति प्राप्त करते हैं।

अनेक सिद्धों तथा फकीरों की धरती हिमाचल के जिला हमीरपुर के जन-मानस में सिद्ध दौला तथा कौला के प्रति अटूट आस्था तथा विश्वास है। इन सिद्धों की मनौती इनके जीवन का एक महत्वपूर्व अंग है। जो देव-भूमि के निवासियों के जीवन-दर्शन के अनुरूप ही है।

-:-

खिला भड़ाच

— स्नेह भारद्वाज

हिमाचल पुण्य-धरा कला-संस्कृति की दृष्टि से सदा एव वैभव शाली रही है। हिमाचल की सम्पूर्ण लोक कलाओं, संस्कृति, त्योहारों व पर्वों की जानकारी रखने का दंभ भरने वाला महामनीषी भी न मालूम कब दातों तले अंगुली दबाने को विवश हो उठे। निश्चय ही हिमाचल के विशाल गर्भ में छिपे इन संस्कृति रत्नों का लेखा-जोखा रख पाना अत्यन्त दुष्कर कार्य है, क्योंकि यहां की धरा के कण-कण में कला बसी है, गांव-गांव की अपनी विशिष्ट संस्कृति है। वर्ष भर कहीं न कहीं कोई न कोई मेला, त्यौहार चलता ही रहता है और यहां का जन-मानस दिन भर कठिन मेहनत करने के बाद नाचता गाता हंसी ठिठोली करता नज़र आता है।

हिमाचल प्रदेश के शिमला ज़िले की तहसील चौपाल में वटेबड़ी नामक गांव में एक ऐसा ही अनूठा पर्व मनाया जाता है-खिला भड़ाच ।

यह त्यौहार कितना पुराना है, इस बात का पता लगा पाना अब कठिन है। वृद्ध से वृद्ध व्यक्ति की श्रुतियों और स्मृतियों की कड़ी जहां तक जा पाती है उससे कहीं पुराना है यह त्यौहार । एक श्रुति के अनुसार इस पर्व का सम्बन्ध वटेबड़ी के निकट 'बाल' नामक गांव के देवता 'गलतू' के साथ जोड़ा जाता है। इस देवता के हाथ में डंडा है और इसी डंडे के प्रतीक सिले को छीनने का प्रयास इस खेलमेंचदाण' व 'वधाण' करते हैं। गलतू देवता की मूर्ति देखने पर एक प्रश्न मन में उठता है कि वास्तव में वह कौन है। किन्तु शीघ्र ही मन्दिर के निरीक्षण से यह बात स्पष्ट होने लगती है। यहां पर प्राप्त पत्थार का शिवलिंग व जलहरी मन्दिर शिव से सम्बन्धित सिद्ध होता है और तब गलतू शिव का गण ठहरता है इस क्षेत्र में कई स्थान पर शिव के गण की कुलष्ठ के रूप में पूजा की जाती रही है अतः स्वामी की रक्षा हेतु हाथ में डंडा लिए उनकी पहरेदारी के लिए सतत जागृत गलतू देवता को शिव का गण ठहराना असंगत न होगा। मेरे इस विचार की पुष्टि पर्व के अवसर पर गलतू के स्थान पर शिरगुल (शिव) की पालकी को लाया जाना, भी करता है।

कार्तिक अमावस्या की रात जब सम्पूर्ण भारत दीप-मालाओं से जगमगा रहा होता है उसी रात वटेबड़ी गांव के कुलिष्ठ शिरगुल की पालकी मन्दिर से बाहर निकाली

जाती है। विशेष बात यह है कि पालकी केवल कर्क लग्न में ही मन्दिर से बाहर निकाली जाती है। दूसरे दिन पालकी उस स्थान पर लाई जाती है जहां खिला{डंडा} गाड़ा जाता है। यह खिला डेढ फुट का भेखल नामक झाड़ी का डंडा होता है जिसे एकदम सीधा जमीन के भीतर एक फुट के लगभग गाड़ दिया जाता है ऊपर पुजाल बिछाकर एक विशेष छिद्र वाले पत्थर से ढक दिया जाता है जिससे सिर्फ आधा फुट खिला ही पत्थर में बने छिद्र से बाहर रहता है।

दीपावली के तीसरे दिन चदाण नामक ब्राह्मण चाहे वे वटेवड़ी में बसते हैं या श्वाल, चौपाल या अन्य कहीं। और इसी तरह खारू, दुहना, शठा आदि सभी जगहों के वधाण नामक राजपूत भी आ जुटते हैं। इनके अतिरिक्त दूर-दूर से श्रद्धालु और दर्शक गण सैकड़ों की सख्यां में यहां पहुंचते हैं तो यह अद्भुत खेल आरम्भ होता है। जिसमें उस डेढ फुट के डंडे को पृथ्वी से खिंचकर उपरोक्त दोनों पक्ष अर्थात् चदाण व वधाण छिन कर विजय श्री हासिल करने की चेष्टा करते हैं। जो व्यक्ति डंडा छीनने में सफल होता है वह उसे ऊंचे आकाश में उछाल देता है।

ऐसी मान्यता है कि पं0 मंगरु के खानदान का व्यक्ति ही सर्व-प्रथाम इस खिले को हाथा लगाता है। यह खानदान पहाड़ी क्षेत्र में अपनी गणित एवं ज्योतिष विद्या के लिए विख्यात है जो पीढियों से जन्त्री भी बनाते चले आ रहे हैं। आजकल पं0 लच्छीराम जी इस परम्परा को आगे बढा रहे हैं ज्यों ही पं0 लच्छीराम इस खिले को पकड़ते हैं तो दोनों पक्षों के प्रतियोगी इसे खींचने और छीनने के लिए झपट पड़ते हैं।

इस स्थान के एक ओर कुछ ढलानदार खेत हैं और नीचे डंकार दूसरी ओर झाड़-भंखाड़ व सेब के बागीचे। एक डेढ फुट के इस डण्डे को छीनने के प्रयास में दोनों दल न मालूम किस ओर निकल पड़ें कभी झाडियों और सेब के वृक्षों से छिलते लहुलूहान होते झूझते हैं तो कभी दूसरी ओर के ढलान-दार खेतों को पार कर जाते हैं ऐसी स्थिति में दर्शक कभी भावीआंशका से कांप उठते हैं तो कभी दम साधे देखते रहते हैं कि कब वह खिला आकाश में ऊंचा उछलता दिखेगा और विजयी पक्ष का हर्षनाद सुनाई पड़ेगा । अब तक के अनुभवों से यह बात सामने आई है कि अधिकांशतः विजय श्री का सेहरा ब्राह्मण दल के सिर ही बंधा है आश्चर्य यह सोच कर होता है कि वे सिकियां खिलाड़ी हृष्ट-पुष्ट राजपूत पुरुषों को कैसे हरा देते हैं जबकि खेल तो बल प्रयोग का ही है ।

सुखद बात यह है कि सैकड़ों वर्षो के इतिहास में आज तक कोई दुर्घटना इस खेल के दौरान नहीं घटी। खिलाड़ी भी जीत या हार को सम भाव से लेते हैं। आज तक दोनों दलों में कभी किसी के प्रति द्वेष की भावना पैदा नहीं हुई अतः यह खेल सद्भावना का प्रतीक पर्व भी माना जाता है।

एक विशेष बात यह भी है कि कई बार चाहे दोनों ही दल कितना भी जोर क्यों न लगा दे खिला जमीन से बाहर ही नहीं खिंचा जाता । परन्तु जब देवता वहां से वापिस आ जाता है तब चाहे एक नन्हा सा बालक ही उसे बाहर क्यों न खींच ले। ऐसे अवसरों पर जन साधारण के मन में विश्वास गहराने लगता है कि देवता उनसे रूष्ट है तभी ऐसा नहीं हुआ और दूसरी ओर जो लोग ऐसी बातों पर विश्वास नहीं करते उनके मन मे भी एक अनुत्तरित प्रश्न टंगा सा रह जाता है कि ऐसा क्यों होता है?

खिला भड़ाच खत्म होने के पश्चात् शिरगुल देवता की पालकी वधाण राजपूतों के गांव ले जायी जाती है और वहां 'जागरा' मनाया जाता है और दूसरे दिन ब्राह्मणों के गांव में । इस जागरे की विशेष बात यह है कि देवता को यज्ञ स्वरूप जो रोटी चढ़ाई जाती है वह शुद मंडवे के आटे से बनी एक विशेष प्रकार की रोटी होती है जिसे "लाटू" कहते हैं जबकि सामान्यतः यहां शुद्ध रूप से मंडवे के आटे का उपयोग ही नहीं किया जाता । इन्हीं जागरों की समाप्ति के साथ ही यह पर्व भी सम्पन्न हो जाता है।

पहाड़ी देवताओं के रथ

- मुरारी शर्मा

प्राकृतिक सौन्दर्य और सुषमा का दूसरा नाम है पहाड़। पहाड़ के जन-मानस के लिए प्रकृति और देवता दोनों ही श्रद्धा व आस्था के प्रतीक रहे हैं। क्योंकि यहां का जन मानस प्रकृति की गोद में आंख खोलता है और देव आस्था के सहारे जिन्दगी में आने वाली मुश्किलों से जूझता हुआ आगे बढ़ता है। पहाड़ के जनमानस के लिए उसका आराध्य देव किसी दूसरे लोक का वासी नहीं है, बल्कि उसके साथ रहने वाला, हर दुःख-सुख में साथ देने वाला तथा आदमी की तरह कभी रूठना, मनाना व नृत्य करना ये सभी प्रक्रियाएं पहाड़ में आदमी और देवता के रिश्ते को सुदृढ़ बनाती हैं तथा एक दूसरे को और करीब लाती हैं। हिमाचल का हर त्यौहार, पर्व व मेला किसी न किसी रूप में देवता व देव परम्पराओं से जुड़ा हुआ होता है। कोई भी कार्य तब तक अधूरा ही माना जाता है, जब तक उसमें देवता उपस्थित न हो। एक तरह से पहाड़ी समाज में गांव का प्रमुख ग्राम देवता को माना जाता है जिसकी आज्ञा के बिना कोई भी कार्य नहीं किया जा सकता । मजे की बात तो यह है कि यहां के देवी-देवता पहाड़ी समाज की मान्यताओं व परम्पराओं के अनुसार ही चलते हैं। पहाड़ों में जहां आज भी सभ्यता व संस्कृति के निर्मल निर्झर फूटते हैं, वहीं हवाओं में खुशबुओं की महक प्रकृति में गजब का आकर्षण और मानव के स्वभाव में निश्छलता व भोलापन है। यदि हम कहें कि उसके पीछे देव संस्कृति और प्रकृति का प्रभाव है तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी क्योंकि प्रकृति की मनमोहक वादियों में ही इन देवी देवताओं के देवालय हैं जहां मौसम के खुलते ही मेले व त्यौहारों का लम्बा सिलसिला लग जाता है। देवताओं की पालकियां सज-धज कर निकाली जाती हैं। रथ के रूप में ये पहाड़ के देवता साकार हो उठते हैं। ढोल नगाड़ों की लय पर कभी नाचते कभी रूठते व झूमते हुए एक दूसरे के गले मिलते हैं।

पहाड़ों में इन रथों को ही देवता के प्रतिबिम्ब के रूप में माना जाता है इन की बनावट व सजावट की विविध शैलियां हिमाचल में पायी जाती हैं। क्षेत्र व भौगोलिक

परिस्थितियों के अनुसार ही इन रथों की बनावट तथा आकार बदल जाते हैं। देवता के रथ की बनावट व सजावट से ही इन देवी देवताओं के बारे में कहा जा सकता है कि ये इस क्षेत्र के देवता हैं। हिमाचल में देवताओं के रथों की शैलियों का इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है:-

कुल्लुई शैली:- कुल्लु जिसे देवभूमि के नाम से ख्याती मिली है। यहां हर गांव में किसी न किसी देवी देवता का निवास स्थान है। जिस कारण हर गांव में देवता का अपना अलग-अलग ही रथ होता है। यहां मुख्यतः तीन शैलियों के रथ पाये जाते हैं। जैसे-ढलवा रथ, छत्र शैली और करन्डु शैली ।

ढलवा रथ शैली:- इस शैली के रथ कुल्लू घाटी में बहुत से देवी देवताओं के बने हुए हैं। इनकी औसतन ऊंचाई चार-साढ़े चार फुट के करीब होती है। इस प्रकार के रथों का ऊपरी भाग पीछे की ओर थोड़ा सा झुका हुआ होता है। जिस पर सोने और चांदी के मुखौटे सजे हुए होते हैं। इनकी संख्या आठ से बारह तक होती है। इस शैली के रथों के शिखर पर छत्र नहीं होते। मुखौटों के चारों ओर चान्दी की पट्टिका होती है। जिसके पीछे सजावट के लिए रंग-बिरंगी चदरें लगायी जाती हैं। ढलवा रथों का आकार जहां छोटा होता है वहीं इनको उठाए जाने वाली अरगलें भी छोटी होती हैं। इनकी लम्बाई छः साढे छः फुट के बीच होती है । इस प्रकार के रथ आम देवताओं के रथों की अपेक्षा ज्यादा भारी होते हैं।

छत्र शैली:- कुल्लू घाटी के देवताओं की यह विशिष्ट शैली है। इस प्रकार के रथ केवल कुल्लू घाटी में ही पाए जाते हैं। इन रथों की शैली अपने आप में महत्वपूर्ण है। चूंकि ढोल, नगाड़ों की कर्णप्रिय धुन पर जहां मनुष्य झूम उठता है, वादियां गूंजने लगती हैं, ऐसे में भला देवता नृत्य किये बिना कैसे रह सकते हैं। सोने व चान्दी से लकदक इन रथों की ऊंचाई कमश साढे छ/: फुट से ऊपर ही होती है। इनके शिखर पर चान्दी का भारी छत्र होता है। इसके अलावा, चान्दी के पुराने सिक्कों की माला(भलका) डोड) चान्दी के छोटे-2 गोले (माला, डोडा, बागा, व चदरों से इस प्रकार के रथों का श्रृंगार किया जाता है। छत्र शैली के रथों की अरगलें लम्बी और लचक-दार होती है जिनके लचकने के कारण ही देवता का रथ ऊपर नीचे जाता है। इसी लय में देवता के आदमी विशेष अन्दाज से रथ को नचाते हैं। ऐसे रथों का वजन कुछ कम होता है, इसी कारण बड़ी देर तक इन्हें नचाया जा सकता है। कुल्लू घाटी के पचहत्र प्रतिशत देवता इसी शैली में बने हुए हैं। कुल्लू घाटी के पितामह देवता जगदग्नि का रथ भी इसी शैली का है।

करन्डु शैली:- करन्डु अर्थात् टोकरी, ऐसी शैली के रथ देवता को निकालने की प्रारम्भिक

अवस्था में होते हैं। एक बड़ी सी टोकरी (जो ऊपर से रथ की तरह प्रतीत होती है) में देवता का एक मुखौटा रखा जाता है। उसे रंगीन कपड़े की चदरों से सजाया जाता है। इसे एक व्यक्ति सिर पर उठाए हुए चलता है। करन्डु के बारे में एक कथा कुल्लूवी समाज में प्रचलित है कि ऋषि जमदग्नि किन्नर कैलाश से अठारह देवताओं की प्रतिमा ऐसे ही एक करन्डु में उठाए हुए ला रहे थे कि रास्ते में भयंकर तूफान आने से वे प्रतिमाएं बिखर गयी। जहां-2 भी वे प्रतिमाएं गिरीं वहीं पर वे देवता प्रकट हुए थे। यह शैली रथों की सबसे प्राचीन शैली है। हिमाचल के अन्य हिस्सों, मण्डी, बल्हघाटी इत्यादि में इसे करन्डी कहा जाता है। इसमें देवता का प्रमुख मोहरा (मुखोटा) रखा जाता है। जिसे ज्येष्ठ मोहरा कहा जाता है। रथ बनने के पश्चात इसे रथ के साथ भी लगाया जाता है।

मण्डयाली शैली:- मण्डी जनपद प्रदेश के मध्य में स्थित होने के कारण जहां यहां के जनमानस के रहन-सहन व वेश-भूषा में विविधता है वहीं यहां के देवी देवताओं की रथ शैलियों में भी विविधता है। रथों की दस विविध शैलियों का अवलोकन मण्डी के राज्यस्तरीय शिव रात्री मेले में किया जा सकता है। मण्डी जनपद में देवताओं के रथोंकीमुख्यतः चार शैलियां हैं, जो भौगोलिकता के आधार पर ही बनी हुई हैं। यहां एक बात और भी गौर करने योग्य है कि शैली और क्षेत्र विशेष के देवताओं में मनुष्य की तरह आपस में रिश्तेदारी है। उदाहरणार्थ बल्हघाटी के देवताओं के पितामह जहां देव कमरूनाग हैं, वही चुहार घाटी के देव हुरग नारायण तथा स्नोर बदार के महर्षि पराशर है। अपने-2 क्षेत्र में इन देवताओं का काफी प्रभाव है।

बल्ह शैली:- बल्हघाटी मण्डी जनपद का मैदानी भागहै,यहां के देवरथ छोटे होने के बावजूद भारी होते हैं। यहां देऊ और देवी के रथों की बनावट अलग-अलग होती है। देऊ के रथ में जहां चार मुखौटे लगे होते हैं, वहीं देवी के रथ में आठ या इससे अधिक मुखोटे लगते हैं। मुखौटों के बीच ही अर्धचन्द्राकार का छत्र होता है। इसके अतिरिक्त डोडमाला, इत्यादि भी रथों को शोभित करती है।

स्नोर बदार शैली:- स्नोर बदार के देवी देवताओं के रथ अपने आप में विशिष्ट शैली के होते हैं। इनकी लम्बाई सामान्य रथों से कुछ अधिक मगर भार में ये हल्के होते हैं। इनकी अरगलें भी लम्बी और लचकदार होती हैं, जो देव नृत्य के समय ऊपर-नीचे लचक कर देवता के रथ के झूमने में सहायक होती हैं। इस शैली के रथों के मण्डप ऊपर से गोल होते हैं जिन पर मखमल का रंगीन वस्त्र लगा होता है। इसके ऊपर सोने या चान्दी का छोटा सा "डोडा"(मण्डप) लगा होता है । जहां देवता के रथों को मुखौटे चार ही लगते हैं वहीं देवी के रथों को भी चार या पांच मुखोटे लगे होते हैं। देवी का रथ थोड़ा ढलवा होने के साथ ऊंचा और छत्रधारी होता है। इन छत्रों का वजन कम से कम दो अढ़ाई किलो होता है।

(पृष्ठ 75 पर देखें)

चुहार घाटी शैलीः- चुहार घाटी के देवताओं की रथ शैली पूरे हिमाचल में अलग किस्म की है। इनके मण्डप पर सफेद कपड़े की छोटी-छोटी कतरने सी लगी होती है जो दूर से देखने में रूईं के फाहे की तरह लगती है। इसके ऊपर चान्दी का छोटा सा मण्डप {डोड} होता है। इस शैली की ऊंचाई सामान्य रथों की तरह ही होती है और वजन भी सामान्य होता है। चुहार घाटी के प्रमुख देवता हुरग नारायण का रथ भी इसी शैली में है।

शिमला शैलीः- कुल्लू और मण्डी की तरह हिमाचल में शिमला और इसके आस-पास के क्षेत्रों में भी देवताओं का प्रभुत्व है। यहां के देवताओं की रथ शैली भी अपनी तरह की है। इस शैली के रथों की ऊंचाई भी अन्य रथों से अपेक्षाकृत कम होती है मगर चौड़ाई कहीं ज्यादा । यही कारण है कि इन रथों को उठाने के लिए दो के बजाय चार व्यक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। इस शैली के रथों की अरगलों के ऊपर चान्दी की पतर चढ़ी होती है और चारों ओर से देखने में एक जैसा ही प्रतीत होता है। ऊपर मण्डप नाम मात्र का होता है। प्रत्येक देवता के साथ एक अलग से छत्र भी होता है।

इस प्रकार हिमाचल में जहां मनुष्य प्रत्यक्ष रूप से देवी देवताओं से जुड़ा हुआ है वहीं क्षेत्र और रीति रिवाज के हिसाबसेयहां के देव रथों की रचना हुई है। जो हिमाचली संस्कृति का एक अभिन्न अंग है।

सिरमौर की लोक गाथाएं

– यज्ञदत्त शर्मा

हिमाचल प्रदेश में प्रचलित लोक गाथाओं का एक अपना विशेष महत्व है ये गाथाऐं प्रदेश की संस्कृति की प्रतीक हैं। प्रदेश की इस धरोहर को नवयुग की गायन शैली समाप्त कर रही है। नये गायकों का इन पौराणिक गाथाओं की ओर ध्यान नहीं जिसका मुख्य कारण है कि पहाड़ी भाषा से मन मुटाव होना व पौराणिक गायकों से इन गाथाओं को नये गायकों द्वारा न सीखना। प्रदेश की संस्कृति को उठाने के लिए इन गाथाओं को जीवन देना एक आवश्यक कदम है।

प्रदेश के जिला सिरमौर में गायन विद्या का प्रादुर्भाव इन्हीं लोक गाथाओं से हुआ है। जिला सिरमौर में इन गाथाओं को अपनी क्षेत्री भाषा में "बुढ़ों" ;"गायण" "आर";"त्हार" कहा जाता है। इन गाथाओं को विशेष अवसरों पर गाया जाता है, गाथा गायन में निपुण गायकों का क्षेत्र में बड़ा आदर किया जाता है। अकसर जिस जगह इन गाथाओं के गायक नहीं होते है वहां दूसरे स्थान से गायकों को बड़े आदर से आमन्त्रित किया जाता है। इन गाथाओं को "दीपावली" कृष्ण जन्माष्टमी, दुर्गाष्टमी, देव जगराता आदि अवसरों पर गाया जाता है। इसके साथ-साथ इन गाथाओं को विवाह अवसर पर भी गाया जाता है व मृत्यु उपरान्त मृतक के परिवार जनों द्वारा रखे जाने वाले "शोक" समाप्त करने के लिए भी लोक गाथाओं का प्रचलन है इसे "शोग चोडनो" यानि शोक समाप्त करना कहा जाता है। इस प्रकार अलग-अलग कारणों में लोक गाथाऐं भी अलग-अलग है जो अलग-अलग अवसरों पर गाई जाती है।

गायन शैलीः-

गाथाओं को गाने के लिए गायकों का भी अलग अलग ढग है। कुछ एक गाथाऐं केवल अकेला गायक या दो गायक ही गाते हैं। दूसरी कुछ गाथाऐं 4-5 का समूह एक आवाज में गाता है। तीसरी कुछ गाथाऐं पहले एक समूह द्वारा गाई जाती हैं उसका अनुसरण फिर दूसरा समूह करता है।

गाथाओं को गाने का प्रचलन अधिकतर पुरूष गायकों में है। "नारी" गायक केवल विवाह अवसर पर गाई जाने वाली गाथाऐं ही गाती हैं। विवाह अवसर

पर वे पुरुष गायक भी गाथाऐं गाते हैं जिन का स्वर नारी गायकों से मिलता हो। गायन शैली अलग-अलग अवसरों पर भिन्न है। देव जगरता के अवसर पर गाये जाने वाली गाथाओं को एक दो गायक ही गाते हैं। उनका स्वर भारी होता है व गाने की "लय" लम्बी, गाने के बोल बहुत बार दोहराये नहीं जाते। देव जगराता के अवसर पर देवता सम्बन्धित गाथाऐं गाई जाती हैं। उस समय वाद्य यन्त्रों में मुख्यतः नगाड़ा बजता है जो गायन शैली के अनुसार बजाया जाता है। गाथा आधे गायन के बाद तीव्र गति में गाई जाती है, उस समय "नगाड़े" तेजी से बजने लगते हैं साथ ही साथ फिर "दमामा" भी बजना आरम्भ होता है। देव जगराता में गाई जाने वाली गाथाऐं देवता को प्रसन्न करने के लिए गाई जाती हैं। दूसरे किसी व्यक्ति पर यदि देवता उतारना हो तो भी गाथाओं का सहारा लिया जाता है। देव जगराता के समय गाई जाने वाली गाथाओं की लय व शब्द इस तरह के होते हैं कि उस समय उपस्थित भाषा समझने वाले हर व्यक्ति के दिलो-दिमाग पर गाथाओं का असर पड़ता है। कुछ व्यक्तियों का शरीर कांपने लगता है। रौंगटे खड़े हो जाते हैं। देव जगराता पर गाई जाने वाली गाथाओं के गायक भी विशष होते हैं वे उच्च जातियों के होते हैं। हरीजन जाति के देव जगराता के समय गायक उन्हीं की जाति के होते हैं। देव जगराता भी दो तरह के हैं एक वे जो क्षेत्र के प्रमुख देवताओं का जगराता है, उसमें गायन सवर्ण जाति के लोग गाते हैं। दूसरा "पापो रे रात" यानि पाप का जगराता यह अपने-अपने परिवार का अलग-2 होता है। पाप भी देव समान होता है परन्तु यह देव{पाप} उसी परिवार के किसी मृत व्यक्ति का मूर्त रूप होता है ऐसे अवसर पर गाये जाने वाली गाथाऐं, अपनी अपनी जाति के गायक गाते हैं।

त्यौहारों पर गाये जाने वाली गाथाऐं:-

ये गाथाएं समूह द्वारा गाई जाती हैं। इन गाथाओं में अधिकतर गायक निम्न जाति के होते हैं। सवर्ण जाति के गायक भी इस समूह में उपस्थित होते हैं। त्यौहार जैसे दीपावली के अवसर पर अमावस्या की रात को देव स्थान के सामने आग जला कर उसके चारों ओर गायक समूह गाथा गाते गाते घूमते रहते हैं। एक माला के रूप में गायक एक दूसरे से हाथ मिलाए होते हैं। इस अवसर की गाथाओं में पहले 2 या 3 गायक, गायन आरम्भ करते हैं उसके बाद अन्य गायक उसी को दोहराते हैं। इस प्रकार की गाथाओं में केवल नगाड़ा ही बजाया जाता है, जो शुरू से अन्त तक एक ही तरह से बजाया जाता है। नगाड़ा बजाने वाले या तो एक ओर बैठे रहते हैं या उस गायक दल के आगे आगे चलते हैं। इस गायक दल में 7-8 गायको से लेकर 15-20 गायक तक हिस्सा लेते हैं। दीपावली की पूरी रात गायक, गाथाऐं गा कर व आग के चारों ओर झूम कर चलते-चलते काटते हैं उस समय "नाच" की

कोई विशेषता नहीं होती । थोड़ी लचक गायकों की कमर में होती हैं । हाथों का भी विशेष परिचालन नहीं होता ।

ये "हारें" मुख्यतया एक घण्टे की अवधी से 2·30घण्टे तक की होती हैं। इन गाथाओं(हारों) को देवता को प्रसन्न करने हेतु गाया जाता है। एक तरह से ये एक आवश्यक पूजा ही मानी जाती है। दूसरे ग्रामिणों को प्रसन्न करने व उन्हें पौराणिक कथाओं को याद दिलाने हेतु गाई जाती हैं। इन गाथाओं को "बुढो" कहा जाता है।

कृष्ण जन्माष्टमी और दुर्गाष्टिमी के अवसर पर जो गाथाऐं गाई जाती हैं उसे एक या दो गायक ही गाते हैं। अन्य लोग केवल सुनते हैं। ये गाथाऐं किसी बड़े मकान के अन्दर या गांव के प्रांगण में बैठकर ही गायी जाती हैं। गायन के साथ सारदी एक तारे की तरह का वाद्य यन्त्र भी बजाया जाता है। जिसे गायक स्वयं ही बजाता है या उसका एक सहायक। ये गायन बहुत मधुर होते हैं गायक बड़े ध्यान से आंखे मूंद कर एकाग्र हो कर गाता है, इन गायनों में दर्द व वीरता भरे शब्द होते हैं इस अवसर पर गाये जाने वाले गायन को "कनैया" कहा जाता है जिसका अर्थ कन्हैया, यानि श्री कृष्ण से लिया जाता है। इन गाथाओं में भगवान श्री कृष्ण की गाथा को उनके जन्म से शुरू किया जाता है। ये गायन 3-4 घण्टे की अवधि तक भी गाया जाता है। ऐसे अवसर पर "पंडायण" भी गया जाता है जिसमें कोख पाण्डव की गाथा गाई जाती है। विशेष देव त्यौहार पर गाथाओं को गायक गाव गांव जा कर भी गाते हैं। श्री कृष्ण जन्माष्टमी के दिन से आरम्भ हो कर दशहरा-दीपावली तक ये गाथायें गायक टोलियों में गांव-गांव जा कर गाते हैं। ऐसी गाथाओं में "गूगे की हार" यानि गूगा पीर की गाथा है, गायक टोलियां बना कर यह गाथा गाते हैं । साथ में गूगा पीर का निशान उठाये रखते हैं जो मोर पंख से बना होता है इसके साथ बजने वाला वाद्य यन्त्र "डमरू" होता है जो गाने की लय के साथ साथ बजता है। "गूगे पीर" के जगराते के वक्त ।5-20 गायकों की टोली "गूगे पीर" की गाथा को एक स्थान पर बैठ कर गाते हैं यह गायन लगभग 2-3 घण्टे तक गाया जाता है।

<u>मरणोपरान्त गाये जाने वाली गाथायें:-</u>

ये गाथायें गांव के किसी भी व्यक्ति के मरने के बाद दुर्गाअष्टमी से दशहरे की रात तक गाई जाती हैं। गांव का गायक दल मृतक के घर के बाहर जा कर गाथाओं को गाता है यह एक आवश्यक प्रथा है। इसे शोग चोड़णो यानि 'शोक-तोड़ना' कहते हैं। इस अवसर पर वीरता की गाथायें गाई जाती हैं। इसके पश्चात् मृतक परिवार मृतक का शोक नहीं रखते व वे गांव में होने वाले दीपावली त्यौहार में खुशी से सम्मिलित

हो जाते हैं । इस समय गाई जाने वाली गाथाऐं भी उसी ढंग से ही गाते हैं जैसे दीपावली की रात को गाई जाती हैं।

विवाह अवसर की गाथायें:-

इन गाथाओं को "मूल" यानि मंगल गायन कहते हैं। विशेष कर इन्हें महिलाओं का समूह गाता है। इनमें विशेष जानकी मंगल व रूकमणी मंगल है इन गाथाओं में मां सीता व रूकमणी के विवाह की गाथा गाई जाती है, इस अवसर पर पार्वती मंगल भी गाया जाता है, इन गाथाओं में विवाह अवसर पर बजने वाले वाद्य यन्त्र धीमी गति से बजाए जाते हैं। इन गाथाओं का स्वर व बोल इतने मधुर होते हैं कि हर उपस्थित व्यक्ति का ध्यान विवाह के दृश्य की ओर खीच लेते हैं।

इस प्रकार सिरमौर में प्रचलित पौराणिक लोक गाथाओं का यहां की संस्कृति में विशेष स्थान है। इस का सम्बन्ध यहां के लोगों के जन-जीव, प्रथाओं, त्यौहारों के साथ-साथ पूजनीय देवी देवताओं के साथ है। किसी भी आयोजन को इन गाथाओं के बिना गाये पूर्ण नहीं माना जाता प्रमुख लोक गाथाऐं निम्न प्रकार हैं :-

देव गाथाऐं:- §1§ पंडायण §2§ महाभारत §3§ भरतरी §4§ कनैया §5§गूंगे रे आर §6§ पांजड़ा §7§ देवो शिर्गलो रे आर §8§ देवा बिजटो रे आर §9§ पार्वती।

सवीर गाथायें:-§1§ मदने रे आर §2§सनौरी रे आर §3§सामा-दौलतु §4§ श्यामा की आर §5§देशु रे आर §6§ झांको-अजबा §7§ दिल्ली रे आर ।

विवाह अवसर की गाथाऐं:- §1§ जानकी मंगल §2§ रूकमणी मंगल §3§ पार्वती-मंगल ।

प्रेम गाथाऐं:- §1§ मदने की आर §2§ झांको अजबा ।

अन्यः- §1§ पझौता आन्दोलन की गाथा ।

कांगड़ा में "रली" विवाह

– सुरेन्द्र शर्मा

हिमाचल प्रदेश भगवान शंकर की कीड़ा स्थली और पार्वती की जन्म भूमि है। इसी लिये हिमाचल को देव भूमि कहा जाता है। यहां की धरती के कण-कण से सैंकड़ों धार्मिक और सांस्कृतिक आस्थाऐं जुड़ी हुई हैं। भोले-भाले लोगों की ये आस्थाऐं यहां के मेलों, व्रतों, पूजाओं और त्यौहारों से प्रगट होती हैं। शिव-पार्वती के विवाह से सम्बन्धित रली पूजा लोग प्राचीन काल से पारम्परिक त्यौहार के रूप में मनाते आ रहे है। पूजा, व्रत और मेले का यह उत्सव चैत्र महीने (मार्च-अप्रैल) में मनाया जाता है।

इस त्यौहार से सम्बन्धित एक कथा प्रचलित है । एक समय की बात है कि एक ब्राह्मण ने अपनी नौजवान कन्या का विवाह उससे बहुत कम उमर के एक लड़के से कर दिया । कन्या ने इस सम्बन्ध का विरोध भी किया लेकिन अन्ततः उसे मां-बाप की इच्छा के आगे झुकना पड़ा। कन्या को विदा कर उसके पति के घर के लिये रवाना कर दिया गया । परम्परा अनुसार उस का छोटा भाई बस्तु उसे छोड़ने के लिये उसके साथ चल दिया ।

चलते-चलते बारात जब नदी के किनारे पहुंची तो रली ने डोली रखने को कहा। रली ने अपने भाई बस्तू को बुलाया और उससे बोली "हे भाई, मेरे भाग्य में जो लिखा था वह तो हो ही गया । अब मैं पूरा जीवन इस छोटी आयु के पति के साथ नहीं गुजार सकती । मैं इस बे-मेल सम्बन्ध के लिए किसी को दोषी नहीं ठहराती, लेकिन भविष्य में जो भी अविवाहित कन्या हर साल चैत्र महीने में श्रद्धापूर्वक शिव पार्वती की पूजा कर उनका विवाह रचायेगी उसे योग्य और मनचाहे वर की प्राप्ति होगी" इतना कह कर रली ने नदी की उफनती धारा में छलांग लगा दी। बस्तु ने अपनी बहन को बचाने के लिए उसके पीछे ही छलांग लगा दी। रली के पति ने जब रली को नदी में देखा तो वह भी नदी मे कूद पड़ा। देखते ही देखते तीनों नदी की तेज धार में वह गये।

ये कहा जाता है कि उसी समय से रली विवाह का प्रचलन समस्त प्रदेश में हो गया । अविवाहित लड़कियां चैत्र मास की संक्राति को घर के एक कोने में कौड़ी दबा कर पूजा शुरू कर देती हैं। बड़े तड़के ही लड़कियां इक्ठी हो कर जंगली फूल

चुनने निकल पड़ती हैं। फूल चुनते हुए भी रली से सम्बन्धित लोक गीत गाती हैं। एक लोक गीत इस प्रकार :-

सब-सब सखिया माये,
फुलां छुंगण चलिया।
मैं भी चली उनके साथ ।
होरना ता छुगिंया गोद दौ गोदा,
मैं छुगी छड़ सार ।

बड़े सवेरे से फूल चुनने निकली लड़कियां जब दिन निकलने पर वापिस आती है तो ये लोक गीत गाती हैं:-

फुला छुंगी नैं जे आई
दितिया परोली उघाड़ माये
बड़िया फुल गुलावे दा ....,
दिति परोल़ न जे उघड़े,
चढ़ी चौबारे आ धीये ।
बढ़िया फुल गुलाबे दा ...।

चैत्र मास के पूरे महीने पूजा करती हैं तथा पहले दूसरे और चौथे सोमवार को व्रत रखती हैं। अंतिम सप्ताह लड़कियां मिटटी छान कर शंकर, रली और बस्तू की मूर्तिया बनाती हैं। प्रतीक अनुसार रली की मूर्ति शंकर से बड़ी बनाई जाती है। लड़कियां बड़े सुन्दर ढंग से इन मूर्तियों को सजाती-संवारती हैं। विवाह की छोटी-मोटी सारी सामग्री इक्ट्ठी की जाती है ।

बैसाख मास की संक्रति वाले दिन रली विवाह का आयोजन होता है। लड़कियां दो भागो में बंट जाती हैं। एक पक्ष दूल्हे की तरफ हो जाता है और दूसरा दुल्हन की तरफ। बारात जाती है, ढोल नगारे बजते हैं, मंत्र पढ़े जाते हैं और फिर सब को भात भी खिलाया जाता है। एक विवाह की पूरी प्रक्रियाऐं की जाती हैं। इस सारी कार्यवाही में अभिवाक्कों, गांव वालों व सगे-सम्बन्धियों का पूरा सहयोग होता है। ये पूर्णतया धार्मिक व सामाजिक उत्सव का रूप ले लेता है।

अगली सुबह रली को विदा किया जाता है। डोली में रख कर गांव के लड़के इन तीनों मूर्तियों को नदी तट पर ले जाते हैं। गांव के सब लोग इस समारोह में शामिल होने नदी तट पर एकत्रित हो जाते हैं।

लड़कियां भाव-विहल होकर रली को नदी के तेज प्रवाह मे छोड़ देती हैं।

कांगड़ा किला इतिहास की कसौटी पर

अश्विनी कुमार गर्ग

पुराना कांगड़ा के प्राचीन किले के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। कोई इसे लाखों वर्ष पुराना ऐतिहासिक स्थान बताता है तो कोई इसका सम्बन्ध महाभारत के साथ जोडता है। ऋग्वेद में इस स्थान का जो उल्लेख आता है उसके अनुसार इसका सम्बन्ध आर्य लोगों के साथ जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। राहुल सांकृत्यायन ने भी इसकी पुष्टि की है।

आधुनिक कांगड़ा शहर से केवल दो किलोमीटर की दूरी पर दो बड़ी खड्डों, बनेर और माझी के दोमेल के कोने पर एक सीधी चट्टान पर यह किला खड़ा है। यदि इस पूरी चट्टान की गोलाई को मापा जाये तो लगभग यह 6 किलो मीटर पड़ती है। ऐसे स्थान का किले के लिये चुनाव ही एक दूरदर्शिता थी। सहज ही शत्रु इस पर आक्रमण नहीं कर सकता था। प्राचीनकाल में दीवार फोड़ने वाली तोपों के बिना इस किले पर विजय पाना बिल्कुल भी सम्भव नहीं था ।

प्राचीनकाल में साम्राज्य को पुरी कहा जाता था।' कहा जाता है कि लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व यहां पर राजा शम्भर का राज्य था । और इस क्षेत्र में उस समय लगभग एक सौ पुरिया (साम्राज्य) थी । उन्हीं दिनों ऋषि भारद्वाज जी के सहयोग से राजा सुदास ने इन पुरियों पर आक्रमण कर दिया । राजा सुदास के आक्रमण से हाहाकार मच गया। लोग यहां से भाग कर आज के किन्नौर क्षेत्र में आ गये। इससे यह प्रमाणित होता है कि कांगड़ा तथा किन्नौर के लोगों के वंशज एक ही थे। राजा सुदास ने केवल इसी पुरी को छोड़ शेष सभी पुरियों को अपने अधिकार में ले लिया । राजा शम्भर की सेना को मुंह की खानी पड़ी। विद्वानों का कथन है कि कांगड़ा के किले को जीतने हेतु राजा सुदास की सेनाओं ने लगातार 40 वर्षों तक युद्ध किया । इस मध्य कई बार उसकी सेनाओं ने किले पर अधिकार किया और कई बार राजा शम्भर ने पुनः इस किले को अपने अधिकार में कर लिया । किन्तु अंतिम विजय राजा सुदास की ही हुई । कहा जाता है कि राजा शम्भर को किले की ऊंचाई से नीचे खडड में गिरा कर मार डाला गया था।

इसी प्रकार एक कथन के अनुसार ग्यारहवीं शताब्दी में मुगल सम्राट महमूद गजनवीं ने इस किले को खूब लूटा । सन् एक हजार नौ में महमूद गजनवी ने इस किले पर आक्रमण किया । वह यहां का बहुत सारा धन अपने साथ गजनी ले गया

इस किले के बनाये जाने पर कई पौराणिक कथायें और भी प्रचलित हैं। कहा जाता है कि महाराज शिव ने एक राक्षस जिसका नाम "जलन्धर" था को जीवित ही भूमि में दबा दिया था जहां पर उसका कान दबा, उस स्थान पर एक किला बनाया गया और इस किले का नाम "कानगढ़" पड़ा §कान वाली जगह पर बना किला§ इस कथन के अनुसार कांगड़ा कानगढ़ का ही एक बिगड़ा हुआ रूप है।

शाहजहां के समय की एक पुस्तक "मुसीफर उल इमरा" में यह लिखित है कि कांगड़े का किला जो कि एक ऊंची चोटी पर बना है बड़ा ही मजबूत है। इसके 23 बुर्ज और सात दार हैं और इसे यदि अन्दर से मापा जाये तो कुल व्यास एक कोस §लगभग 2 किलोमीटर§ और पंद्रह जंजीर है । इस की लम्बाई एक चौथाई कोस और दो जंजीर है। चौड़ाई पद्रह से पच्चीस जंजीर तक और ऊंचाई एक सौ चौदह हाथ है। यह भी अंकित है कि किले के अन्दर दो बड़े ताल भी हैं।

सइस किले के बारे में यह प्रसिद्ध है कि जिसने इस पर विजय प्राप्त कर ली, उसने पहाड़ पर विजय प्राप्त कर ली। हेनरी लारेन्स ने भी इस किले को एकजिब्राल्टर कहा है।

इस कथन के अनुसार पांडव भीम ने इस किले का निर्माण करवाया और कांगडा नगर को बसाया। उसने अपने नाम पर इस किले का नाम "भीमकोट" और शहर का नाम भीमनगर रखा । परन्तु भीमकोट और भीमनगर के नारम मुसलमान इतिहास कारों की पुस्तकों में ही मिलता है, इससे पहले नहीं ।

सन् 1008 में उदय भाडपुर के हिन्दूशाही राजा आनन्दपाल को महमूद गजनवी ने अटक के समीप "छच्छ" के मैदान में हराया । इस हार से आनन्दपाल राजा की सेना में भगदड़ मच गई। छच्छ के मैदान के पीछे सिन्ध नदी के साथ ही शाही राजाओं का एक बहुत बड़ा और अटूट किला था। यह किला कांगडा किला के अनुरूप ही दो खड्डों के जोड़§मूल§ पर एक ऊंची पहाड़ी पर बना हुआ था। इस किले को शाही राजा भीमपाल ने बनाया था। भीमपाल ने इसका नाम अपने नाम पर "भीमकोट या "भीमनगर" रखा। इस किले को "नगरकोट या लगर कोट भी कहा जाता था। आज भी जिला हजारा में तारबेल के समीप इसके खण्डहर हैं।

इस किले में शाही राजाओं की एक टकसाल भी थी। इन राजाओं ने अपना कोष और कीमती सामान इसी किले में रखो हुआ था। किले की सेनायें छच्त्र के मैदान में युद्ध में रत थी। पीछे किला असुरक्षित ही था। केवल नौकर चाकर और मन्दिर के पुजारी ही थे। महमूद गजनवी ने सोचा कि आनन्दपाल की सेना में तो भगदड़ मची है और इसी समय यदि उसकी सेना किले तक पहुंचे, उससे पहले ही पहुंच कर किले

को लूटा जाये । इस समय का लाभ उठाकर महमूद गजनवी ने किले को खूब लूटा। यही किला था जिसको महमूद गजनवी ने सन एक हजार नौ (सन 1009) में लूटा, न कि कांगडा किला को ।

सन् 1337 में मुहम्मद तुगलक और सन 1365 में फिरोज तुगलक ने कांगड़ा किला पर विजय पाई। फिरोज तुगलक ने लगभग छः (6) मास तक किले के चारों ओर घेरा डालकर इस किले पर विजय पाई परन्तु इस किले के राजा से धन-दौलत और घोड़े इत्यादि लेकर किले को फिर उसे ही लौटा दिया । सन्न् 1427 में जैन उपाध्याय जयसागर एक यात्रासंघ ले कांगड़ा आये। इस यात्रा का वृतान्त उन्होंने एक विज्ञप्ति के रूप में किया है। यह महासंघ सिन्ध से चलकर फरीदपुर से हेता हुआ कांगड़ा जिसका नाम उस समय नगरकोट था, पहुंचा । बनेर खड्ड को पार करने के पश्चात ज्येष्ठ शुदी पांच को किले के सात द्वारो को लांघ कर आदिनाथ के मन्दिर तक पहूंचा। दस दिन कांगड़ा में रह कर यह संघ वापिस लौट गया ।

सन् 1540 में ख्वास खां ने इस किले को जीत लिया । इसे हमीदखां कक्कड के अधिकार में दे दिया। इसके 10 वर्ष उपरान्त यानि सन् 1550 में यह किला फिर कांगड़ा के राजा के अधिकार में आया। महाराजा अकबर ने कांगड़ा किले को अपने अधिकार में लेने हेतु बार-बार परिश्रम किया, परन्तु कुछ बन नहीं पाया । नवम्बर, 1620 को जहांगीर की सेनाओं ने बहुत ही कठिनाई और प्रयत्न से इस किले पर विजय पाई। इस विजय पर जहांगीर ने "तुजुकेजहांगीरी" में लिखा है, " आज कांगड़ा किले पर विजय प्राप्ति का समाचार सुन कर मेरा दिल प्रसन्नता से भर उठा है। मुझे यह एक ऐसी विजय मिली है जो किसी भी सुल्तान को नहीं मिल पाई"।

जहांगीर ने इस किले में मुगल फौजदार रखा। सन् 1783 तक किला मुगलों के अधिकार में रहा । इसके उपरान्त तीन वर्ष तक यानि सन 1786 तक जस्सा सिंह आहलूवालिया के अधिकार में रहा ।

सन् 1786 में ही राजा संसारचन्द कटोच ने इस किले को अपने अधिकार में ले लिया । सन 1806 में गोरखों ने इस किले पर घेरा डाल दिया। महाराजा संसारचन्द ने महाराजा रणजीत सिंह को सहायता हेतु प्रार्थना की कि यदि वह गोरखों को खदेड़ दे तो उसके बदले इस किले को वह अपने अधिकार में ले सकता है।

सन् 1809 में यह किला महाराजा रणजीतसिंह के अधिकार में आ गया। सिक्खों को अंग्रेज़ो ने मात दी और 28मई1846 में यह किला फिर अंग्रेजो के अधिकार में आ गया ।

यह किला वह जिब्राल्टर था, जिसकी दीवारें को कोई भी आक्रमणकारी

(शेष पृष्ठ 75 पर)

रामपुर व गानवी क्षेत्र का "रई" मेला

भारत तिब्बत राष्ट्रीय राजमार्ग पर शिमला से लगभग डेढ़ सौ कि0 मी0 की दूरी पर स्थित ज्यूरी स्थान से 6 किलोमीटर बाईं ओर गांव गानवी रामपुर 15/20 के अन्तर्गत एक सुन्दर पर्वतीय स्थल है। यह 6 किलोमीटर का रास्ता पैदल ही तय करना पड़ता है । श्रीखण्ड : से निकलने वाली एक छोटी नदी {खड्} जिसे गांव के नाम पर "गानवी नाला" सम्बोधित किया जाता है, लगभग पांच सौ की आबादी वाले इस गांव को दो भागो में विभक्त करती है। एक ओर स्थानीय लोगों के घर व एक प्राचीन मन्दिर जिसमें ल्हारू वीर व लाचा देवता आदि की मूर्तियां स्थापित हैं तथा दूसरी ओर राजकीय उच्च पाठशाला व अधिकतर सरकारी कार्यालय आदि स्थित हैं।

इस पूरे क्षेत्र {रामपुर 15/20} में पांच पचायतें आती हैं-फांचा, चण्डी-ब्रण्डा (जघोरी) कूट, काओबिल {लबाणा-सदाणा} व सरमारा । इनमें फाचां और सरयारा पंचातें अपेक्षाकृत बड़ी हैं। क्षेत्र के निवासी अधिक तर मिलनसार, हसंमुख व आतिथ्य प्रेमी है। लोक नृत्य यहां की संस्कृति का अनिवार्य अगं है।

मन्दिर में स्थापित लांचा देवता का मुहरा अष्ठधातु से निर्मित है। प्रचलित अवधारणा के अनुसार इस मुहरे का निर्माण किन्नौर के कोठी गांव के एक शिल्पकार {लुहार} ने किया है। इस मुहरे के साथ चार अन्य मुहरे भी जुड़े हैं जो चान्दी के हैं। ये क्रमशः बजीर दाप्रेन्दु {किन्नौरी देवता} तथा दो अन्य सजावट के लिए लगाए गए हैं। ल्हारू वीर का मुहरा अष्ठधातु का बना है। इसके साथ तीन अन्य मुहरे जुड़े हैं जो बुड़कू देव माथे तक सोने व शेष चान्दी का बना है व दो अन्य सजावट के लिए संलग्न किए गए हैं। ये दोनों चांदी के बने हैं ।

इस क्षेत्र में पुरूष ऊन का बना छुपटा {कुर्ता} ऊनी सूथान, सदरी {बास्केट}, गाची {कमरपट्ट} तथा बुशहरी टोपी पहनते हैं। स्त्रियां ऊन का बना चादरू {पट्टू} गाची, चोली व धाठु तथा आभूषणो में चांदी का बना हार, चान्दी की जुट्टी, सोने के बाले, सोने का लौंग, सोने की ब्लाक, चान्दी का माथे पर लगाया जाने वाला डोरा, बन्द {कंगन} सोने/चांदी का बना चॉक, चान्दी की बनी गलसरी {कण्ठी}, सोने चांदी की कंगणी {अंगूठी},

दो लरी तथा तुनकी पहने जाने का प्रचलन है।

गांव गानवी का रई मेला भादों मास की अमावस के तीसरे दिन अर्थात् तृतीया से मनाया जाता है। इस मेले में 15/20 क्षेत्र के सभी लोगों के साथ-साथ ज्योरी-सराहन तक के लोग आते हैं। नाचते हैं और खुशियां मनाते हैं। ल्हारू वीर जो इस समस्त क्षेत्र के खूंदों{राजपूतों विशेष} का गढ़िया देवता माना जाता है, के नाम यह मेला समर्पित होता है।

"कम्बा से "सुग्गा"{इस 15/20 क्षेत्र के समस्त गांव} तक के प्रत्येक घर से तृतीया को तीन-तीन पाथे{एक पाथा लगभग डेढ़ सेर} अनाज ल्हारू वीर को चढ़ाया जाता है। इक्ट्ठे हुए इस आनाज को देवता के खर्च हेतु भण्डार में सुरक्षित रखा जाता है। इसे देवोत्सवों में भोज तथा अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुःख, बीमारी या गावं वालों द्वारा आयोजित धार्मिक बैठकों में प्रयोग में लाया जाता है।

आनाज एकत्रिकरण की इस निर्धारित तिथि से रई मेले का आरम्भ होता है जो तीन दिनों तक चलता है। इस मेले में एक विशेष बात यह भी है कि स्थानीय देवता{बुड़कू} को सिर्फ इसी मेले में दो दिनों के लिए जनता-दर्शनार्थ निकाला जाता है। शेष सारा साल यह अपने स्थानमेंबन्द रहता है। इस अवधि में इसकी पूजा अर्चना भी नहीं की जाती है।

मेले का प्रारम्भ देव बुड़कू द्वारा आटे की सिगड़ी-जामड़ी{सिड्डू} बांटने के पश्चात् होता है। देवताओं को अपने स्थान से निकालकर निर्धारित खुले प्रांगण में लोगों के दर्शनार्थ रखा जाता है। लोग वहां जाकर अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिए पूजा अर्चना करते हैं और शंका-निवारण हेतु प्रश्न पूछते हैं। देवताओं के रथ के नीचेसे निकलना शुभ समझा जाता है। माना जाता है कि ऐसा करने से दुष्टात्माओं से मुक्ति मिलती है और मन को शान्ति प्राप्त होती है। अन्तिम दिन यह मेला अपनी चरम सीमा पर होता है। दोपहर को अलग-अलग स्थानों से आए दलों द्वारा नृत्य किये जाते हैं। शाम को सामूहिक नृत्य का कार्यक्रम चलता है जिसमें अक्सर सभी लोग {पुरूष-स्त्रियां} मिलकर नाटी{लोक नृत्य का प्रकार} रचाते हैं फिर देवताओं का आगमन होता है। कुछ देर लोगों के मध्य उपस्थित हो यह देवगण वापिस अपने स्थान पर चले जाते हैं अगले पर्व तक के लिए इस क्षेत्र में देवी देवताओं से सम्बन्धित निम्नलिखित मेले भी मनाए जाते हैं :-

12 सावन को गांव सरपारा में "वा" रे जातर" चैत माह के नवरात्रो में "सौरे जातर" और नागपंचमी को "व्हाजनू"। व्हाजनू मेले को प्राचीन समय से ही मनाया

जाता है। इस मेले में खूब गाली-गलोच देना व अश्लील हरकतें करना अनिवार्य माना जाता है। दीपावली के ठीक एक मास पश्चात् गावं काओंबिल में "देओली" व असूज नवरात्रा में "दुर्गा जात्र" मनाई जाती है। 17,18 आषाढ़ को फांचा/बड़ा गावं में, 19,20 आषाढ़ को जंघोरी व आषाढ़ संक्रांति को "कूट" में ठागरा का अयोजन होता है।

रमेश जसरोटिया

(पृष्ठ 60 का शेष)

लड़कियों के भाई बस्तू की तरह नदी में छलांगे लगा-लगा कर रली को बचाने का प्रदर्शन करते हैं।

जहां-जहां भी रली विसर्जन होता है बैसाख के दूसरे प्रविष्टे को मेले जरूर लगते हैं। कांगड़ा घाटी मे रली विवाह के मुख्य मेले कांगड़ा में वाण गंगा, धर्मशाला में मज नदी{चरी गांव}, पालमपुर में डाडा नामक स्थान पर तथा जोगिन्द्रनगर मण्डी में मच्छियाल नामक स्थान पर लगते हैं। इन्हीं मेलों के साथ चैत्र महीने से चल रहे रली पूजा का समापन भी होता है।

(पृष्ठ 72 का शेष)

तोड़ न सका। यह वह किला था जिसके फाटक को खोलने पर ही कोई अन्दर आ सकता था। प्रकृति ने इसे झकझोड़ दिया । सन् 1905 के भयानक भूकम्प ने इसे खण्डहर बना दिया । आज भी यह किला जैसे भी है अपनी स्वच्छन्द गाथा का प्रतीतक है ।

(पृष्ठ 77 का शेष)

श्री के॰ के॰ किदवई, श्रीमती सुदर्शन डोगरा तथा श्री देवराज संसालवी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। कार्यक्रम का संचालन 'श्री शबाब ललित' ने किया। इस अवसर पर अकादमी की गतिविधियां प्रस्तुत करते हुए सचिव, अकादमी ने बताया कि क्षेत्रीय भाषाओं के साहित्यकारों की आदान-प्रदान योजना अकादमी द्वारा स्वीकृत की गई है और इसके लिए आगामी वित्त वर्ष में प्रदेश के साहित्यकारों को अन्य प्रदेशों के भ्रमण के लिए भेजा जाएगा।

दिनांक 17 मार्च, 1989 से 23 मार्च तक बिलासपुर में नलवाड़ी मेले के अवसर पर पुस्तक प्रर्दशनी लगाई गई ।

अकादमी की गतिविधियां

जनवरी, 1989 से अप्रैल, 1989

अकादमी के तत्वावधान में दिनांक 11 जनवरी, 1989 को शिमला के बचत भवन में पहाड़ी-हिन्दी शब्दकोश के निर्माण से सम्बन्धित विषय पर विचार-गोष्ठी का आयोजन किया गया । इसमें प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों से लगभग 30 विद्वानों ने भाग लिया। इस गोष्ठी में श्री एम॰आर॰ठाकुर ने "पहाड़ी भाषा की विभिन्न उपभाषाओं में उच्चारण की मानक शब्दावली की समस्या तथा उसका समाधान" विषय पर अपना विषय पत्र प्रस्तुत करते हुए पहाड़ी भाषा की ध्वनियों तथा उच्चारण से सम्बन्धित विभिन्न समस्याओंकी ओर संकेत किया। विद्वानों ने भी अपने-अपने सुझाव दिए । गोष्ठी में पहाड़ी-हिन्दी शब्दकोश निमातृ सहालकार समिति के सदस्यों ने भी भाग लिया। डॉ0 अनिल राकेशी, डॉ0 ओम प्रकाश सारस्वत, डॉ0 खुशीराम गौतम, डॉ0 कांशी राम आत्रेय आदि विद्वानों का मत था कि शब्दकोश में शब्दों के आगे विभिन्न बोलियों के संकेत चिन्ह दर्शाये जाने चाहिएं ताकि यह पता चल सके कि सम्मिलित शब्द किस उपभाषा से सम्बन्धित है। सचिव अकादमी डॉ0 बंशीराम शर्मा ने बताया कि शब्दकोश "ज" व्यंजन तक लगभग 16,000 शब्दों को अंतिमित किया जा चुका है और "प" व्यंजन तक शब्द सूचियां तैयार कर ली गई हैं। गोष्ठी की अध्यक्षता श्री सी॰आर॰बी॰ललित निदेशक भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश ने की।

दिनांक 18 व 19 फरवरी, 1989 को हिमाचल अकादमी तथा पहाड़ी साहित्य सभा दिल्ली के संयुक्त तत्वावधान में हिमाचली (पहाड़ी) लेखकों के प्रथम राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन हिमाचल भवन, नई दिल्ली में किया गया। सम्मेलन का उद्घाटन 18 फरवरी, 1989 को प्रातः 1-00 बजे माननीय लोकसभा अध्यक्ष श्री बलराम जाखड़ ने किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता डॉ0 डी0बी0पटनायक, निदेशक भारतीय भाषा संस्थान मैसूर, ने की। डॉ0 जाखड़ ने पहाड़ी भाषा के वयोवृद्ध साहित्यकार श्री भवानी दत्त शास्त्री को साहित्य चूड़ामणि पुरस्कार से सम्मानित किया। इस दिन के कार्यक्रम के पहले सत्र में डॉ0 बंशीराम शर्मा तथा डॉ0 पीयूष गुलेरी द्वारा सयुंक्त रूप से "पहाड़ी भाषा और साहित्य का इतिहास व उपलब्धियां" विषय पर पत्र प्रस्तुत किया। इसी दिन सांय 6-30 बजे एक पहाड़ी कवि सम्मेलन का आयोजन भी किया गया । जिसकी अध्यक्षता माननीय खाद्य एवं आपूर्ति राज्य मन्त्री पंडित सुखराम जी ने की। लगभग 30 कवियों ने अपनी-अपनी कविताएं इस कवि सम्मेलन में पढ़ी।

दिनांक 19 फरवरी, 1989 को लेखक गोष्ठी की अध्यक्षता प्रो0 नारायण चन्द पराशर, संसद सदस्य एवं उपाध्यक्ष अकादमी ने की। इस दिन प्रो0 नरेन्द्र अरूण ने "हिमाचल के पहाड़ी साहित्यकारों की समस्याएं व समाधान " विषय पर विषय पत्र प्रस्तुत किया। अपरान्ह 3-00 बजे समापन समारोह की अध्यक्षता श्री सागर चन्द नैयर माननीय शिक्षा मन्त्री एवं वरिष्ठ उपाध्यक्ष अकादमी ने की। उन्होंने चम्बयाली बोली में समापन भाषण दिया। इस कार्यक्रम की विशेषता यह रही कि डॉ0 डी·बी· पटनायक को छोड़ कर सभी ने हिन्दी एवं पहाड़ी भाषा में ही अपने विचार विद्वान् साहित्यकारों के सम्मुख रखे। लगभग 100 साहित्यकारों, विद्वानों ने इस आयोजन में भाग लिया। दिनांक 18, 19, फरवरी, 1989 को हिमाचल भवन दिल्ली में एक पुस्तक प्रदर्शनी का आयोजन भी किया गया। इस प्रदर्शनी का उद्घाटन डॉ0 बलराम जाखड़ ने किया तथा माननीय शिक्षा मन्त्री हिमाचल प्रदेश ने भी इस प्रदर्शनी का निरीक्षण किया।

दिनांक 27 फरवरी, 1989 को बचत भवन, नाहन जिला सिरमौर में ज़िला सिरमौर के भाषायी तथा सांस्कृतिक सर्वेक्षण सेमिनार का आयोजन किया गया। इस सेमीनार में जिला सिरमौर की सामाजिक व्यवस्था, संस्कार आदि विभिन्न विधाओं पर विचार विमर्श हुआ और सर्वेक्षकों ने अपने-अपने सुझाव दिए। यहां यह उल्लेखनीय है कि सांस्कृतिक तथा भाषायी सर्वेक्षण की योजना गत वर्षों से भाषा विभाग द्वारा संचालित की जा रही थी और अकादमी तथा विभाग के मध्य गत वर्ष किये गये कार्य-विभाजन के फलस्वरूप अकादमी को हस्तान्तरित की गई है। इसी योजना के अन्तर्गत जिला सिरमौर में यह प्रथम सर्वेक्षक सेमिनार था । इसी प्रकार की जिला स्तरीय सर्वेक्षक गोष्ठियां अन्य जिलों में भी आयोजित की जाएंगी।

दिनांक 18 फरवरी को बचत भवन नाहन में ही एक उर्दू भाषा के प्रोत्साहन के लिए उर्दू गोष्ठी में श्री के·के·तूर द्वारा "हिमाचल की उर्दू कविता" में अस्तित्व-वाद विषय पर शोध पत्र प्रस्तुत किया गया। तदुपरान्त उक्त विषय पर विस्तृत चर्चा हुई।

मण्डी में दिनांक 6 मार्च, 1989 से 13 मार्च तक ज़िला स्तीरय शिवरात्री मेले के अवसर पर अकादमी द्वारा पुस्तक प्रदर्शनी लगाई गई।

अकादमी द्वारा 14 मार्च, 1989 को बचत भवन शिमला में हिमाचल प्रदेश के दस दिनों के भ्रमण पर आए हुए श्री खुर्शीद राथूर के नेतृत्व में जम्मू के सात सदस्यीय दल के सम्मान में एक अनौपचारिक कवि सम्मेलन का आयोजन किया गया इसमें लगभग 15 कवियों ने भाग लिया। अतिथि साहित्यकारों ने भी डोगरी तथा उर्दू की कविताओं से श्रोताओं को भाव विभोर कर दिया। प्रदेश के अन्य कवियों में श्री सी·आर·बी·ललित,

(शेष पृष्ठ 75 पर)

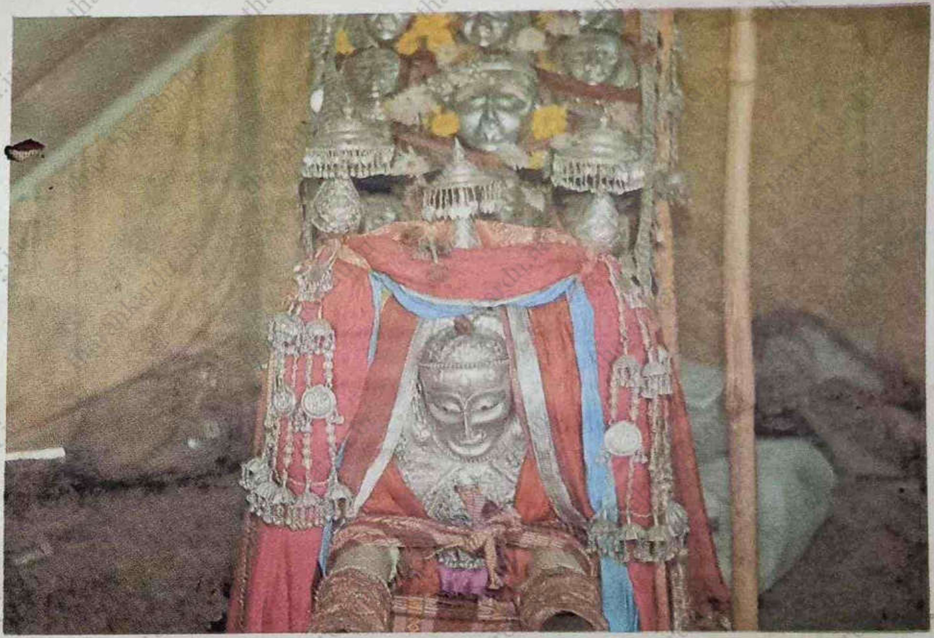

देवरथ में मूर्ति

tharahkardu.in

HAACL पंजीकरण संख्या-28271/75

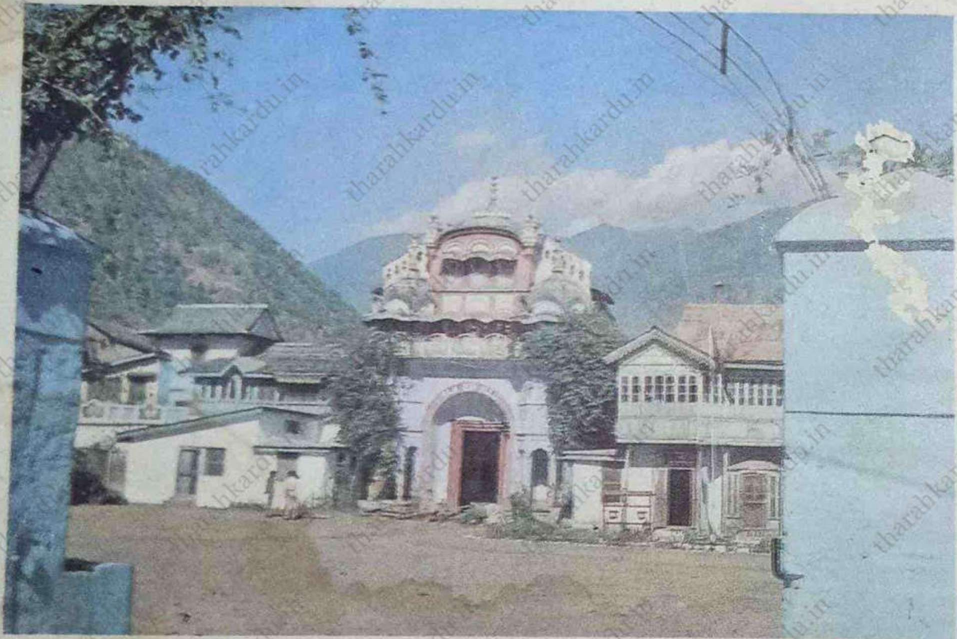

बौद्ध मन्दिर

सचिव हिमाचल कला, सस्कृति और भाषा अकादमी, शिमला द्वारा पकाशित तथा
प्रोग्रेसिव ऑफसेट प्रिन्टर्स, गगल, कागड़ा फोन न·54 द्वारा मुद्रित

tharahkardu.in